(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का आध्यात्मिक मासिक-पत्र)

वार्षिक मू० २॥) सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई। एक अंक का ।)

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥

सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, सहा० सम्पादक—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम०ए०

वर्ष ९] मथुरा, १ मार्च सन् १९४८ ई० [अंक ३

मृत्यु से जीवन का अन्त नहीं होता।

जैसे हम फटे पुराने या जले गले कपड़ों को छोड़ देते हैं और नये कपड़े धारण करते हैं वैसे ही पुराने शरीरों को बदलते और नयों को धारण करते रहते हैं। जैसे कपड़ों को उलटफेर का शरीर पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता वैसे ही शरीरों की उलट पलट का आत्मा पर असर नहीं होता। जब कोई व्यक्ति मर जाता है तो भी वस्तुतः उसका नाश नहीं होता।

मृत्यु कोई ऐसी वस्तु नहीं, जिसके कारण हमें रोने या डरने की आवश्यकता पड़े। शरीर के लिए रोना वृथा है क्योंकि वह निर्जीव पदार्थों का बना हुआ है। मरने के बाद भी वह ज्यों का त्यों पड़ा रहता है। कोई चाहे तो मसालों में लपेट कर मुद्दतों तक अपने पास रखे रह सकता है। पर सभी जानते हैं कि—देह जड़ है। संबंध तो उस आत्मा से होता है जो शरीर छोड़ देने के बाद भी जीवित रहती है। फिर जो जीवित है, मौजूद है, उसके लिए रोने और शोक करने से क्या प्रयोजन?

दो जीवनों को जोड़ने वाली ग्रन्थि को मृत्यु कहते हैं। यह एक वाहन है जिस पर चढ़कर आत्माएं इधर से उधर-उधर से इधर आती जाती रहती हैं। जिन्हें हम प्यार करते हैं वे मृत्यु द्वारा हमसे छीने नहीं जा सकते। वे अदृश्य बन जाते हैं तो भी उनकी सत्ता में कोई अन्तर नहीं आता। जो कल मौजूद था वह आज भी मौजूद है। हम न दूसरों को मरा हुआ मानें न अपनी मृत्यु से डरें, क्योंकि मरना एक विश्राम मात्र है उसे अन्त नहीं कहा जा सकता।

अखंडज्योति द्वारा प्रकाशित अमूल्य पुस्तकें।

इन पुस्तकों की एक एक पंक्ति, गहरे अनुभव और अनुसंधान के साथ लिखी गई है।

(१) मैं क्या हूं ? ।=)
(२) सूर्य चिकित्सा विज्ञान ।=)
(३) प्राण चिकित्सा विज्ञान ।=)
(४) परकाया प्रवेश ।=)
(५) स्वस्थ और सुन्दर बनने की विद्या ।=)
(६) मानवीय विद्युत के चमत्कार ।=)
(७) स्वर योग से दिव्य ज्ञान ।=)
(८) भोग में योग ।=)
(९) बुद्धि बढ़ाने के उपाय ।=)
(१०) धनवान बनने के गुप्त रहस्य ।=)
(११) पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि ।=)
(१२) वशीकरण की सच्ची सिद्धि ।=)
(१३) मरने के बाद हमारा क्या होता है ? ।=)
(१४) जीव जन्तुओं की बोली समझना ।=)
(१५) ईश्वर कौन है ? कहां है ? कैसा है ? ।=)
(१६) क्या धर्म ? क्या अधर्म ।=)
(१७) गहना कर्मणो गति ।=)
(१८) जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर प्रकाश ।=)
(१९) पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा ।=)
(२०) शक्ति संचय के पथ पर ।=)
(२१) आत्मगौरव की साधना ।=)
(२२) प्रतिष्ठा का उच्चसोपान ।=)
(२३) मित्रभाव बढ़ाने की कला ।=)
(२४) आन्तरिक उल्लास का विकाश ।=)
(२५) आगे बढ़ने की तैयारी ।=)
(२६) अध्यात्म धर्मका अवलम्बन ।=)
(२७) ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन ।=)
(२८) ज्ञान योग, कर्मयोग, भक्ति योग ।=)
(२९) यम और नियम ।=)
(३०) आसन और प्राणायाम ।=)
(३१) प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि ।=)
(३२) तुलसी के अमृतोपम गुण ।=)
(३३) आकृति देखकर मनुष्य की पहचान ।=)
(३४) मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शिक्षा ।=)
(३५) ईश्वर और स्वर्गप्राप्ति का सच्चामार्ग ।=)
(३६) हस्तरेखा विज्ञान ।=)
(३७) विवेक सतसई ।=)
(३८) संजीवनी विद्या ।=)
(३९) गायत्री की चमत्कारी साधना ।=)
(४०) महान जागरण ।=)
(४१) तुम महान हो ।=)
(४२) गृहस्थ योग ।=)
(४३) अमृत पारस और कल्प वृक्ष की प्राप्ति ।=)
(४४) घरेलू चिकित्सा ।=)
(४५) बिना औषधि के कायाकल्प ।=)
(४६) पंच तत्वों से सम्पूर्ण रोगों का निवारण ।=)
(४७) हमें स्वप्न क्यों दीखते हैं ? ।=)
(४८) विचार करने की कला ।=)
(४९) दीर्घ जीवन के रहस्य ।=)
(५०) हम वक्ता कैसे बन सकते हैं ।=)
(५१) लेखन कला ।=)
(५२) प्रार्थना के प्रत्यक्ष चमत्कार ।=)
(५३) विचार संचालन विद्या ।=)
(५४) नेत्ररोगों की प्राकृतिक चिकित्सा ।=)
(५५) अध्यात्म शास्त्र ।=)
(५६) स्वप्न दोष की मनोवैज्ञानिक चिकित्सा ।=)
(५७) सफलता के तीन साधन ।=)
(५८) शिखा और यज्ञोपवीत का रहस्य ।=)
(५९) दूध की चमत्कारिक शक्ति ।=)
(६०) दैवी संपदायें ।=)
(६१) अध्यात्म विद्या का प्रवेश द्वार ।=)
(६२) कुछ धार्मिक प्रश्नों का उचित समाधान ।=)
(६३) सुखी वृद्धावस्था ।=)
(६४) आत्मोन्नति का मनोवैज्ञानिक मार्ग ।=)
(६५) वैज्ञानिक अध्यात्मवाद ।=)
(६६) प्रत्यक्ष फलदायिनी साधनायें ।=)
(६७) योग के नाम पर मायाचार ।=)
(६८) जादूगरी या छल ? ।=)
(६९) सौभाग्य बढ़ाने की कला ।=)
(७०) सम्मोहन विज्ञान ।=)

मूल्य में कमी के लिए लिखा पढ़ी व्यर्थ है। ३) रु० से अधिक की पुस्तकें लेने पर डाक खर्च माफ

—व्यवस्थापक "अखंडज्योति" कार्यालय, मथुरा।

मथुरा १ मार्च सन् १९४८

हमारे बापू अमर हैं।

राष्ट्रपिता—महात्मा गान्धी—विगत ३० जनवरी को मर गये।' यह समाचार जितना सत्य है इतना ही असत्य भी है। आत्मायें मरा नहीं करतीं। शरीर मरते हैं! जिस दिन प्राणी जन्म लेता है उसी दिन से उसकी आंशिक मृत्यु आरंभ होजाती है और एक दिन आता है कि किसी रोग दुर्घटना आदि के बहाने उसका अन्त होजाता है। अन्त के साथ ही आरंभ भी होजाता है। मृत्यु और जीवन एक दूसरे से अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध हैं।

जो जन्मा है उसका मरण निश्चित है। यह बात केवल इस पंच भौतिक शरीर के लिए कही जाती है। शरीर आत्मा का एक परिधान मात्र है। वस्त्र फट, टूट या नष्ट होजाने पर भी शरीर नष्ट नहीं होता, इसी प्रकार शरीर नष्ट होजाने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता। उसका अस्तित्व सदा एक समान रहता है।

बापू का शरीर मर गया पर उनकी आत्मा अब भी पूर्ववत् जीवित है और उसका कार्य-पूर्ववत् जारी है। ऐसी महान आत्मायें कभी मरा नहीं करतीं। क्या हरिश्चन्द्र मर गए? नहीं उनका कार्य अभी भी जारी है, अपने जीवन काल में उन्होंने जितने व्यक्तियों को सत्य का अनुयायी बनाया था—अपनी मृत्यु से लेकर अब तक वे उससे कहीं अधिक अनुयायी बना चुके हैं। प्रहलाद, दधीच, मोरध्वज, राम, कृष्ण के जीवन भौतिक दृष्टि से समाप्त हो चुके हैं पर उनके आदर्श ज्यों के त्यों प्रकाशवान् हैं और संसार का पथ प्रदर्शन कर रहे हैं।

महात्मा गान्धी का शरीर न रहा—वे जिन आदर्शों के लिए जीवित थे उन्हीं आदर्शों की वेदी पर उन्होंने अपने रक्त की अञ्जलियां चढ़ा दीं। इस महा अनुष्ठान ने उनकी महानता को और भी अधिक प्रकाशवान बनादिया है। तारे बुझ सकते हैं, सूर्यचन्द्र बुझ सकते हैं पर उस अमर आत्मा का प्रकाश नहीं बुझ सकता। जीवन भर वे जो शिक्षा देते रहे वे शिक्षायें अनन्तकाल तक अबाध गति से देते रहेंगे। सुनने वाले उसी श्रद्धा से उनके उपदेशों को सुनते रहेंगे जैसे कि उनके मुख से निकले हुए प्रवचनों को सुनते थे। और उसी प्रकार शिक्षा ग्रहण करते रहेंगे जिस प्रकार उनके द्वारा उस जीवन काल में ग्रहण करते थे।

विष का प्याला पीकर भी सुकरात मरे नहीं हैं, क्रूस पर लटकाये जाने के बाद भी ईसामसीह का अन्त नहीं हुआ, अपने जीवन काल में उनके उपदेशों को स्वीकार करने वाले उंगलियों पर गिनने लायक शिष्य थे, पर क्रूस के लटकाये हुए मसीहा की शक्ति अत्यधिक बढ़गई और आज लगभग आधी दुनियां ने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया हुआ है। महात्मा गान्धी ने अपने जीवन काल में असंख्यों को प्रकाश दिया पर इस बलि-दान के बाद तो उनकी शक्ति ईसामसीह की भांति अनेक गुनी बढ़ गई है और वे अपने सिद्धान्तों को, आदर्शों को जनसाधारण के हृदयों में बिठाने के लिए अधिक तत्परता से कार्य करेंगे।

यह सच है कि बापू के उठ जाने से हमारी आंखों के आगे अन्धकार आगया है चारों ओर

सूना सूना दिखाई पड़ रहा है। पर यह भी सच है कि वह ज्योति और भी अधिक प्रकाश के साथ दीप्तिमान होरही है और जिन स्थानों तक वह प्रकाश अब तक नहीं पहुंच पाया था वहाँ भी उस अलौकिक आभा की किरणें जग-मगाने लगी हैं।

बापू का अभाव, उनकी निर्मम हत्या, हत्यारे का उन्माद यह तीनों ही बातें हमें दारुण दुख देरही हैं, हमारे हृदयों में अपारवेदना उमड़ रही है फिर भी हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं है। बापू हमारे बीच में से गये नहीं हैं, उनकी स्थूल वाणी अब सूक्ष्म होकर अधिक शक्ति के साथ मानव हृदयों में स्फुरणा उत्पन्न कर रही है। उनकी हत्या हमारे लिए कितनी ही लज्जा की बात क्यों न हो पर स्वयं बापू के लिए वैसी ही शानदार है जैसा उनका जीवन शानदार था। इस हत्या ने उनके महा प्रताप और उज्वल यश को हजारों-लाखों गुना बढ़ा दिया है। क्रूसने ईसा को महाप्रभु बनाया था—पिस्तौल की गोलियों ने महात्मा गान्धी को भी महाप्रभु गान्धी बना दिया है।

हत्यारे का उन्माद गान्धी जी के शरीर के लिए जितना घातक सिद्ध हुआ उससे असंख्य गुना घातक उन उद्देश्यों के लिए सिद्ध हुआ जिनको पूरा करने के लिए वह हत्या करने आया था। आज साम्प्रदायिकता बे मौत मर रही है। वह इसलिए नहीं मर रही है कि सरकार उसका दमन कर रही है या करेगी वरन् इसलिए मर रही है कि बापू की हत्या के साथ साथ हर व्यक्ति के मनमें उनके लिये घोर घृणा उत्पन्न होगई है। जो लोग कल तक साम्प्रदायिकता से सहानुभूति रखते थे आज उनके हृदय पलट गये हैं वे स्वयमेव उसकी हानि को अनुभव कर रहे हैं और उसका परित्याग कर रहे हैं। जो लोग स्वभावतः कट्टर पंथी थे वे अब लुंज पुंज होगए क्योंकि जन साधारण के मन में उमड़े हुए विरोध के सम्मुख अब वे अपनी बात प्रकट करने का साहस नहीं कर सकते। इस प्रकार हत्यारा जिन उद्देश्यों को परिपुष्ट एवं विजयी बनाने के लिए गान्धी जी के ऊपर आक्रमण करने चला था, उसके आक्रमण से उन उद्देश्यों की ही अन्त्येष्टि होगई। बापू जीवित रहकर सम्प्रदायिक उन्माद पर उतना काबू नहीं पा सके थे जितना कि अब अपना रक्त तर्पण करके उस पर काबू पारहे हैं—उसका नाश कर रहे हैं।

हमारे बापू महाप्रयाण कर गये हम उनके लिए रोरहे हैं, हमारी आंखें खारे जल की अविरल-धारा से उनके लिए श्रद्धाञ्जलियां अर्पण कर रही हैं, रह रह कर कलेजे में उठने वाली हूक हमारा छाती को खाली किये देरही है, पर इस विषम वेला में भी हमें एक प्रकाश दीख रहा है वह है बापूकी अमर आत्मा का, अखंडज्योति का, प्रकाश। उनका बल अनेक गुना बढ़ गया है, अब वे सीमित शरीर बन्धनों से मुक्त होकर विमुक्त वातावरण में विचरण कर रहे हैं और हमारा पथ प्रदर्शन पहले की अपेक्षा और भी अधिक दृढ़ता से कर रहे हैं।

बापू सत्य के शोधक थे, प्रेम के पुजारी थे, न्याय के देवता थे। जिसे उन्होंने सत्य समझा उसके लिए अगाध श्रद्धा और अटूट दृढ़ता रखी। वे पाप से घृणा करते थे पर पापियों के लिए भी उनके हिमालय से उच्च हृदय में प्रेम की, करुणा की दया की, क्षमा की अजस्र धारा बहती थी। न्याय के लिए-पददलित भारत पुत्रों के लिए-वे वृटिश सरकार जैसी सत्ता से खाली हाथ होते हुए भी लड़े। अछूतों के लिए वे सारे समाज से लड़े! कन्ट्रोले को तुड़वाने के लिए वे सरकार से लड़े और अन्तिम दिनों में वे धर्म का पक्ष लेकर साम्प्रदायिक उन्माद से लड़रहे थे। जिन उद्देशों के लिए वे जीवित थे उन्हीं के लिए जूझ गये।

बापू, हमें प्रकाश दो, हम भी तुम्हारे आदर्शों के लिए, सत्य के लिए, प्रेम के लिए, न्याय के लिए जीवित रहना चाहते हैं उनके लिए ही-आपकी भांति हम भी अपना उत्सर्ग करना चाहते हैं। बापू हमें प्रकाश दो—और अधिक प्रकाश दो।

धर्म और साम्प्रदिकता।

कई व्यक्ति धर्म और साम्प्रदायिकता को एक समझ कर दोनों को आपस में मिला देते हैं और एक का दोष दूसरे पर मढ़ कर एक उलझन भरी स्थिति पैदा कर देते हैं। इस गड़बड़ी से बचने के लिए हमें धर्म भावना और साम्प्रदायिकता का अन्तर भली प्रकार समझ लेना चाहिए।

धर्म अन्तःकरण की उन उच्च भावनाओं को कहते हैं जो मानव जीवन को उत्कर्ष एवं कल्याण के पथ पर ले जाती हैं। धर्म के दश लक्षण बताते हुए भगवान मनु ने उन्हीं गुणों को गिनाया है जिनको अपनाने से जीवन में पवित्रता, संयम, उदारता, एवं उन्नति की ओर प्रगति होती है। यह धर्म तत्व मनुष्य प्राणी का स्वभाव है। वह उसकी आत्मा की पुकार है, इस तत्व का आचरण करने से अन्तस्तल में शान्ति मिलती है और उसके विपरीत आचरण करने पर अन्तरंग जीवन में घोर अशान्ति उत्पन्न होती है।

धर्म का पालन किये बिना न व्यक्ति की, न समाज की, किसी की भी शान्ति और सुव्यवस्था स्थिर नहीं रह सकती, इसलिए धर्म की धारणा उतनी ही आवश्यक मानी गई है जितनी कि जल वायु और अन्न का सेवन। लोगों को धार्मिक बनाने के लिए प्रायः सभी विचारवान व्यक्ति अपने प्रयत्न जारी रखते हैं। यही प्रयत्न सामूहिक रूप से भी विविधि प्रक्रियाओं द्वारा किये जाते हैं। सदाचारी, कर्तव्यपरायण, सच्चे नागरिक, देशभक्त, लोक सेवक, धर्मवान् एवं ईश्वरभक्त का एक ही अर्थ है।

दो पैर के पशु को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने के लिए धर्म की अभिभावना की गई है। इस धर्म भावना को जीवन में भली भांति, अन्तस्तल में अधिक गहराई तक धारण किया जासके, इस दृष्टि से धार्मिक प्रथायें, परिपाटियां कर्मकाण्ड विश्वास, सिद्धान्त, पूजा, उपासना, संस्कार, शास्त्र आदि की व्यवस्था की गई। यह सब बातें मिलकर एक 'समाज धर्म' बनता है।

हिन्दू धर्म, इस्लाम, इसाइयत, बौद्ध धर्म, आदि अनेकों धर्म, समय की आवश्यकताओं को ध्यानमें रखते हुए अवतीर्ण हुए हैं। देश काल पात्र की आवश्यकता और स्थिति का ध्यान रखते हुए समाज धर्मों का प्रचलन किया—अथवा पुराने प्रचलनों में आवश्यक सुधार किया। इन सभी 'समाज धर्मों' ने एक ही मूल धर्म तत्व से प्रकाश ग्रहण किया है। उसीके आधार पर उन्होंने अपना वाह्य रूप विनिर्मित किया है। सभी समाज धर्म—सदाचार, कर्तव्य परायणता, संयम, लोक सेवा, उदारता आदि उच्च मानवीय गुणों की मानव हृदय में स्थापना को अपना एक मात्र उद्देश्य मानते हैं। कार्य प्रणाली पृथक२ होते हुए भी सब धर्मों में समानता है। तरीके, विश्वास विधान अलग २ होते हुए भी वे सब मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने का प्रयत्न करते हैं।

सब धर्मों में इतनी अन्तरंग एकता होते हुए भी आज हम देखते हैं कि धर्म के नाम पर भारी विद्वेष और रक्तपात फैल रहा है। इसे देखकर स्थूल दृष्टि वाले लोग ऐसा सोचने को विवश होते हैं कि—"सारे झगड़ों की जड़ यह धर्म ही है। जबतक इसे जड़मूल से नष्टकर दिया जायगा तबतब इसे दुनियाँ चैन से न बैठ सकेगी।" परन्तु यह विचार बहुत ही उथला है, वह एक तर्क मालूम पड़ता है पर वस्तुतः तर्काभास मात्र है।

धर्म के लिए—धर्म के कारण—कभी कोई झगड़ा नहीं होता। झगड़ों का कारण है 'साम्प्रदायिकता'। साम्प्रदायिकता का अर्थ है—संकीर्णता, अनुदारता, आपपूती, स्वार्थपरता, अहंकारिता। यह साम्प्रदायिकता जिस क्षेत्र में भी घुस बैठती है वहीं भारी विद्वेष, घृणा, शोषण, उत्पीडन क्रूरता तथा अनाचार का बोल बाला कर देती है। यह केवल धार्मिक क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रहती वरन् हर क्षेत्र में अपना विषैला कार्य

जारी रखती है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में वर्ग विद्वेष के रूप में वह मौजूद है। जर्मनी में यहूदियों के विरुद्ध, अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध, अमेरिका में नीग्रो लोगों के विरुद्ध यही साम्प्रदायिकता काम कर रही है। देशभक्ति के नाम पर एक देश के नेता अपने देश के लाभ के लिए दूसरे देशों का शोषण करते हैं। जापान ने चीन पर, इटली ने अबीसीनियां पर, जर्मनी से अपने पड़ौसी देशों पर चढ़ाई की थी, भारत को इतने दिन इसी चक्र ने गुलामी में जकड़े रखा, पिछले दो महायुद्धों में लगभग एक करोड़ मनुष्यों का खून बहगया, अपार सम्पत्ति स्वाहा हुई, और आज भी परमाणु बम बन रहे हैं, तीसरे महा युद्ध की आधार शिला रखदी गई है। आगे भी न जाने कितना बड़ा संहार होने वाला है।

आर्थिक क्षेत्रमें यह साम्प्रदायिकता-अनुदारता, अपने दूसरे रूप में मौजूद है। जिसे पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, उपयोगिता वाद, अवसर वाद, आदि नाम से पुकारते हैं। इन प्रक्रियाओं द्वारा एक वर्ग अपने लाभ के लिए असंख्यों को भूखा मारता है और उन्हें तबाह कर देता है, गरीबों की हड्डियों पर अमीरों के महल खड़े होते हैं। एक ओर करोड़ों मन अन्न इसलिए जला कर नष्ट किया जाता है कि दुनियां में मंहगाई बढ़े-दूसरी ओर उन अन्न के दानों के लिए लाखों आदमी तड़प तड़प कर प्राण त्यागते हैं।

सामाजिक क्षेत्रों में यह साम्प्रदायिकता-छूत अछूत, स्त्री पुरुष, जाति पांति, एवं मजहब सम्प्रदाय के रूप सामने आती है। एक वर्ग अपने को ऊंचा और दूसरे को नीच मानता है। अपने वर्ग, वंश, समुदाय को दैवी अधिकार सम्पन्न होने का दावा करता है और दूसरों को नीच मानता है। अपने वर्ग के लिए विशेष सुविधायें प्राप्त करना चाहता है और इसके लिए दूसरे वर्ग के साथ कितना ही अन्याय होता हो इसकी परवा नहीं करता। मुसलिमलीग ने इसी साम्प्रदायिकता को हाथ में लेकर ऐसा उग्रविष उगला जो चार लाख निर्दोष प्राणियों को एक फुसकार में डस गया। हिन्दुओं में यह विष भीतर ही भीतर बहुत दिनों से जड़ जमाये बैठा है। जाति-पांति के नाम पर, दलबन्दी चल रही है, एक जाति अपने को ऊंचा और दूसरों को नीचा बताती है, अपनी जाति के लिए विशेष अधिकार चाहती है। दस करोड़ व्यक्तियों को केवल इस लिए सामाजिक जीवन से बहिष्कृत कर रखा गया है कि उनका जन्म एक विशेष जाति में हुआ है। यही बात स्त्रियों के अधिकारों के संबंध में है जिन अधिकारों को पुरुष स्वच्छंद रूप से भोगते हैं उन्हीं अधिकार यदि स्त्रियों के लिए मांगे जाते हैं तो लोगों की भौंहें तन जाती हैं।

दार्शनिक क्षेत्र में यह साम्प्रदायिकता-मनुष्य और पशुओं के अधिकारों में भारी वैषम्य उपस्थित किये हुए है। पशुओं का हर प्रकार का शोषण ही नहीं उनकी नृशंस हत्या तक मनुष्य का कानूनी अधिकार मान लिया गया है। उसके विरुद्ध कोई प्रतिबन्ध नहीं है, कई बार तो उसे बलिदान और कुर्बानी के नाम पर उलटा पुण्य मान लिया जाता है। इसके अतिरिक्त विविधि प्रकार की कल्पनाऐं, मान्यताऐं एक सम्प्रदाय बनी बैठी है। "हमारे धर्मग्रन्थ में यह लिखा है, हमारे सम्प्रदाय के विद्वानों ने ऐसा कहा है, हमारे पूर्वज ऐसा करते रहे हैं," इन्हीं दलीलों के आधार पर अनेकों थोथी, भ्रान्त, अवैज्ञानिक, हानिकारक विचार धाराऐं हमारे मस्तिष्कों पर कब्जा किये हुए हैं। उस साम्प्रदायिकता के चंगुल में से ऊपर उठकर निष्पक्ष सत्यके दर्शन करने तक का साहस नहीं होपाता।

आत्मिक क्षेत्र में यह साम्प्रदायिकता-पक्षपात, स्वार्थ, मोह, ममता, लोभ, अहंकार, दंभ, मद, मत्सरता, शोषण, आक्रमण, घृणा, द्वेष, ईर्षा आदि के रूप में विचरण करती है। "जो मेरा सो अच्छा" का सिद्धान्त साम्प्रदायिकता को धार पर चढ़कर इतना तीव्र होजाता के उसके आगे "जो अच्छा सो मेरा" की बात तक सोचना कठिन

होजाता है। साम्प्रदायिकता एक ऐसा रंगीन चस्मा है जिसे पहन लेने पर पक्षपात, स्वार्थ, अहंकार, आपापूती के ही रंग में रंगी हुई दृष्टि हर चीज पर पड़ती है। यह दृष्टि कोण ऐसा है जो अपने निर्धारित क्षेत्र के स्वार्थ साधन के लिए अन्य सभी क्षेत्रों का विनाश करने में उसे जरा भी हिचक नहीं होती। सारे उपद्रवों, झगड़ों, की जड़ यही साम्प्रदायिकता है।

आज हिन्दू मुसलिम द्वेष के रूप से यह साम्प्रदायिकता पैशाचिक नृत्य कर रही है। पर अन्य क्षेत्र भी उससे अछूते नहीं हैं। इस पिशाचिनी का दोष बेचारे धर्म के ऊपर थोपना ऐसा ही है जैसा कोई हत्यारी डाकिन—किसी कबूतर के घोंसले के बगल में बैठ कर मनुष्यों के बालकों को खाजाय परन्तु देखने वाले यह अनुमान लगावें कि इस कबूतर ने इतने बच्चों को उदरस्थ कर लिया है। धर्म को नष्ट करने से साम्प्रदायिकता नष्ट न होगी वरन् वह एक मात्र बन्धन भी टूट जायगा जो इस विध्वंसक दृष्टि के लिए प्रतिबन्ध साबित होता है।

कोई चोर कम्बल ओढ़े हुए चोरी करने जाता है तो क्या यह मान लिया जाय कि चोरी का दोष कम्बल पर है। वेश्याएं भी दूध पीती हैं—क्या इसलिए यह मानलिया जाय कि दूध पीने वाले व्यभिचारी होते हैं? लड़ने वाले लोग दो धर्मों को मानते हैं, और उनका नाम लेकर लड़ते हैं तो यह नहीं कहा जासकता कि लड़ाई का कारण धर्म है। खेतों के किसी कारण से दो किसानों में लड़ाई होजाती है तो क्या उसका दोष खेती को देना उचित होगा? क्या इस लड़ाई के कारण खेती को नष्ट कर दिया जाय? क्या चोर कम्बल ओढ़ते हैं इसलिए कम्बलों को मिटा दिया जाय? पढ़े लिखे आदमी भी बदमाश पाये जाते हैं क्या इसी कारण शिक्षा को नष्ट कर डाला जाय? जब इन्हें नष्ट करना उचित नहीं तो यह भी उचित न होगा कि धर्म के बहाने साम्प्रदायिक हरकतें करने वालों की क्रियाओं का उत्तर दायित्व धर्म पर थोप दिया जाय।

धर्म मानव प्राणी की आन्तरिक और बाह्य परिस्थितियों में सुख शान्ति की स्थापना करताहै, जब कि साम्प्रदायिकता द्वेष और हिंसा का बीजारोपण करती है। हमें धर्म और साम्प्रदायिकता के बीच रहने वाले भारी अन्तर को पहचानना चाहिए और धर्म की महत्ता और साम्प्रदायिकता की तुच्छता को भली प्रकार समझना चाहिए।

महात्मा गान्धी इस युग के सबसे बड़े धर्मात्मा थे, उनका जीवन धार्मिक आदर्शों से ओत प्रोत था, धर्म में उनकी अगाध आस्था थी—पर साम्प्रदायकता के, हर क्षेत्र में फैली हुई साम्प्रदायिकता के, विरुद्ध वे सदैव लड़ते रहे और उसी लड़ाई में वे एक बहादुर सेनापति की तरह जूझ गये। आइए, हम भी उनके पदचिन्हों पर चलें, अपने महान् धर्म के लिए, संगठन, प्रचार, परिमार्जन और उन्नयन के लिए, प्राणप्रण से प्रयत्न करें। पर, साथ ही सत्यानाशी साम्प्रदायिकता के विरुद्ध खम ठोक कर कर्तव्यनिष्ठ सिपाही की तरह लड़ते भी रहें।

अच्छा कार्य जो कर चुके हो, उसे भूल जाओ, जो कर रहे हो उस पर विचार मत करो, जो आइन्दा करने वाले हो उसे जल्द से जल्द बल और प्रयत्न के साथ कर डालने का साहस रक्खो।

\+ + +

भूतकाल को शोकपूर्ण दृष्टि से न देखो, वह पुनः लौट नहीं सकता। बुद्धिमत्ता के साथ वर्तमान की उन्नति करो, वह तुम्हारा है।

\+ + +

अल्प बुद्धि वाले लोग भाग्य पर और परिस्थितियों में विश्वास करते हैं किन्तु दृढ़चित्त लोग कारण और कार्य में विश्वास करते हैं।

\+ + +

क्या चमत्कार आवश्यक हैं ?

एक समय था जब किसी महापुरुष के प्रति अज्ञ जनता के मनमें भक्ति भावना जागृत करने के लिए उसे चमत्कारी सिद्ध किया जाता था। यह उचित भी था, क्योंकि विचार विज्ञान से अपरिचित, दूर जंगलों में एकाकी जीवन व्यतीत करने वाले अल्पज्ञ लोग, महापुरुषों और उनकी महत्ता का वास्तविक तात्पर्य समझने में असमर्थ होते थे। उनका मस्तिष्क इतना अविकसित होता था कि वे यह समझ नहीं पाते थे कि किसी विशेष प्रकार के विचार धारण करने वालों को—ब्रह्म वेत्ताओं को-श्रेष्ठ समझना चाहिए। इस परिस्थिति में यही एक मात्र उपाय था कि उन अविकसित लोगों को यह बताया जाय कि अमुक व्यक्ति में अमुक प्रकार के अलौकिक चमत्कार करने की दैवी शक्ति है, इसलिए वह श्रद्धास्पद है। जरूरत पड़ने पर किसी तरकीब से कोई चमत्कारी बात उन्हें दिखाई भी जासकती थी पर आमतौर से किम्वदन्तियां प्रचलित कर देने से यह कार्य आसानी से हो जाता था।

हम पढ़ा और सुना करते हैं कि हमारे अमुक पूर्वज में अमुक प्रकार की चमत्कारी शक्ति थी। इससे आमतौर पर उनके महान होने का विश्वास होजाता है और उनके प्रति श्रद्धा बढ़ती है। इस हद तक चमत्कारों सम्बन्धी किम्वदन्तियों का महत्व भी है और उपयोगिता भी। परन्तु वस्तुस्थिति का एक दूसरा पहलू भी है, जिस पर विचार करने से प्रतीत होता है कि किसी समय किन्हीं लोगों के लिए यह प्रचार प्रणाली उपयोगी भले ही रही है पर आज तो वह अनुपयोगी ही सिद्ध होरही है।

जिन महापुरुषों के महान जीवन कार्यों से अनुकरण का लाभ उठाया जाना चाहिए था, वह इनके चमत्कारी या देवदूत होने की आड़ में विलुप्त होजाता है। देवता, देवदूत, अवतार या भगवान का अनुकरण भला साधारण मनुष्य कैसे कर सकते हैं ? इस बात को सोचकर लोग अपने आदरणीय महापुरुषों से प्रकाश या प्रेरणा ग्रहण करने को तत्पर नहीं होते। श्री रामचन्द्र जी और श्रीकृष्ण जी के जीवन में ऐसे असंख्यों संदेश भरे पड़े हैं जो उनके श्रद्धालुओं, भक्तों के जीवन क्रम को कुछ से कुछ बना सकते हैं—पर यह हो कैसे ? जब उन्हें अलौकिक पुरुष मानलिया गया तो जो स्वयं अलौकिक नहीं है वह उनके अनुगमन का साहस कैसे कर सकता है ? आज तो श्रीकृष्ण चरित्र के श्रवणमात्र से अथवा उनकी लीलाओं का रास, अभिनय, चित्रण आदि देखने मात्र से मुक्ति मिलजाने की आशा की जाती है। जब यह विचार मनों में भरे हुए हैं तो उनके कष्ट साध्य अनुगमन की कोई क्यों इच्छा करे ?

अनेकों ऋषि, तपस्वी, योद्धा, लोक सेवी, ब्राह्मण, पुरुषार्थी, महापुरुष, त्यागी हमारे इतिहास के पन्ने पन्ने पर अंकित हैं। पर वे है कोई न कोई चमत्कारी। किसी न किसी देवता की उन पर कृपा रही है। छत्रपति शिवाजी तक को दुर्गा से तलवार मिलती है तभी वे अत्याचारियों से लड़पाते हैं। साधारण व्यक्ति सोचता है मुझे किसी देवता ने तलवार नहीं दी है तो फिर भला मैं कैसे किसी महान कार्य को करने में समर्थ होसकता हूं ? यह सोचते सोचते उसकी आशा और उत्साह की कलियाँ मुर्झा जाती हैं। संसार के समस्तदेश और समस्त जातियां अपने पूर्वजों से प्रेरणा और प्रकाश ग्रहण करते हैं, उनसे पद चिन्हों पर चलने का प्रोत्साहन प्राप्त करते हैं, पर हमारा चमत्कारवाद हमें इस महान लाभ से वंचित कर देता है-विमुख बना देता है।

अभी युग पुरुष, विश्वबन्द्य महात्मा गान्धी का महा प्रयाण होकर चुका है। इस महामानव ने जो जो महा कार्य कर दिखाये, युग को पलट दिया, उस महा चमत्कारों से विश्व के समस्त

विचारवान व्यक्ति आश्चर्य से चकित हैं और उन्हें आज तक पृथ्वी पर उत्पन्न हुए सर्वश्रेष्ठ पांच महामानवोंमें से एक मानते हैं। पर हमारे पास एक दर्जन से अधिक व्यक्तियों के ऐसे पत्र आये हैं जिसमें उनने यह प्रकट किया है कि महात्मा गान्धी में कोई चमत्कार नहीं थे। वे लिखते हैं—(१) महात्मा गान्धी अपनी मृत्यु का समय तक नहीं जान सके (२) मारने वाले की गोली को अपने योग बल से व्यर्थ नहीं बना सके (३) कोई ऐसी करामतें उनने नहीं दिखाईं जो अलौकिक होतीं। इन कारणों से वे गान्धी को पहुंचा हुआ महात्मा नहीं मानते। एक सज्जन ने तो ईश्वर तक पर अविश्वास प्रकट किया है कि जब वह भक्तों का रक्षक है तो उसने गान्धी जी को बचाया क्यों नहीं? जब उसने नहीं बचाया तो या तो ईश्वर भक्त वत्सल नहीं है या गान्धी जी भक्त नहीं थे।

इन उपरोक्त आशंकाओं की मूल में एक ही विचार धारा काम कर रही है कि—किसी महापुरुष को अलौकिक चमत्कारी या देवता का कृपा पात्र अवश्य होना चाहिए। जिन आदि पुरुषों ने चमत्कार वाद का आरंभ किया होगा उन्होंने यह कल्पना भी न की होगी कि भविष्य में यह मान्यता बिगड़ते बिगड़ते यहां तक जा पहुंचेगी कि कोई भी धूर्त बाजीगरी के हथकंडे बताकर श्रद्धालु लोगों को उल्लू बना लिया करेगा और कोई भी महापुरुष इसलिए साधारण समझा जायगा कि उसने कोई हैरत अंगेज करिश्मा करके अपने को देवता साबित नहीं किया। एक प्रथा किस उद्देश्य से आरंभ की गई थी और उसका अन्त में क्या वीभत्स रूप हमारे सामने आगया। इस दैव दुर्विपाक को क्या कहा जाय?

हमें वस्तुस्थिति को ठीक रूप से समझने के लिए इतिहास के पृष्ठों को पुनः एक बार गंभीरता पूर्वक पलटना पड़ेगा और छोटे छोटे करिश्मों के चुटकुलों को एक ओर हटा कर महापुरुषों के जीवन की प्रमुख घटनाओं पर विचार करना पड़ेगा तभी हम समझ सकेंगे कि—गुप्त बातों का जानना, परमात्मा की मर्जी से परिचित होना या व्यक्तियों और घटनाओं को मनमाना बना लेना मनुष्य के हाथ में है या नहीं? परमात्मा ढाल तलवार लेकर अपने भक्तों की प्राण रक्षा करने के लिए साथ साथ फिरता है या नहीं?

जानकी जी चुराईं गईं। क्या रामचन्द्रजी इतना भी भविष्य ज्ञान न रखते थे? रावण से उन्हें लड़ने के लिए बानरों की सेना सजानी पड़ी और इतना बड़ा संग्राम करना पड़ा, क्या वे रावण को अपनी शक्ति से चारपाई पर पड़ा पड़ा ही न मार सकते थे? भगवान कृष्ण के पैर में एक भील ने तीर मारा, उनका महाप्रमाण होगया क्या वे इसको पहले से न जानते थे? यदि जानते थे तो अपने को क्यों न बचाया? संजय और धृतराष्ट्र तो दिव्यदर्शी थे, क्या उन्हें मालूम न था कि महाभारत में हार हमारे पक्ष की होगी यदि मालूम था तो उसे रोका क्यों नहीं? क्या कृष्णजी को यह मालूम था कि महाभारत के बाद इतनी देशव्यापी दुर्दशा होगी जिसके प्रायश्चित्त स्वरूप पांडवों को आत्महत्या करनी पड़ेगी?

जो बात गान्धी जी के बारे में कही जासकती है वही बात भगवान राम और कृष्ण के बारे में भी कही जासकती है। जिनको दैवी सहायता मिले और संकट से बचजांय वे भगवान के कृपा पात्र—और जिनको कष्ट सहने पड़े, तप करने पड़ें वे भगवान के अकृपा पात्र—यह तो कोई उचित मान्यता नहीं है। हमारे असंख्यों वीर पुरुष धर्म के लिए दीवारों में चुने गए हैं, खौलते तेल के कढ़ावों में तले गये हैं, जिन्दा जलाये गये हैं, शूली पर चढ़े और फांसी पर झूले हैं क्या उन सबको भगवान का द्वेषी कह दें? बंगाल के दुर्भिक्ष में लाखों आदमी भूखसे मर गये, साम्प्रदायिक हत्या काण्डों में चार लक्ष मानव प्राणी उत्सर्ग होगये इन पीड़ितों के प्राण बचाने के लिए कितनों ने ही अपने प्राणों की बलि चढ़ादी। गत दो महा युद्धों में कितने ही व्यक्ति कर्तव्य के लिए लड़ते

हुए मरे, कितने ही चालाकों द्वारा चंगुल में फँसा कर मरवा डाले गये, कितने ही निर्दोष अपने घरों में बैठे हुए बमों के शिकार होगये, क्या इन सबको ईश्वरीय कोप का भाजन कहना उचित होगा? इन दुखद अवसरों पर भी अनेक व्यक्ति स्वार्थ साधन में तत्पर रहे, उन्होंने अवसर से लाभ उठाया और मालोमाल होगये, आज वे मूंछों पर ताव देरहे हैं क्या इन्हें ईश्वर का कृपा पात्र कहना चाहिए? बंगाल की भूखमरी में अन्न संचय का मुनाफा बटोरने वाले, साम्प्रदायिक उपद्रवों में हाथ साफ करके लूटकेमाल से अमीर बने हुए गुण्डे क्या भगवान के कृपा पात्र हैं?

सच बात यह है कि कर्म करने में मनुष्य स्वतंत्र है। वह भले या बुरे चाहे जैसे कर्म स्वेच्छा से कर सकता है। भगवान किसी के कर्म मार्ग में रोड़ा नहीं बनते। हां कर्म कर चुकने के बाद उसके फल से मनुष्य नहीं बच सकता। तीर चलाना न चलाना हमारी इच्छा के ऊपर निर्भर है पर तीर चल जाने के बाद हम उसके परिणाम को नहीं टाल सकते। मनुष्य चाहे तो बुरे कर्म कर सकता है—घृणित से घृणित दुष्टतायें और श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सत्कर्म करने की उसे पूरी पूरी आजादी है पर क्रिया के बाद तुरन्त या देर में उसे सामाजिक, राजकीय, आत्मिक अथवा दैवी परिणाम अवश्य प्राप्त होगा। यह सोचना उचित नहीं कि जितने पीड़ित शोषित या सताये हुए हैं यह सब पूर्व कर्म का फल पारहे हैं और जितने गुलछर्रे उड़ाने वाले हैं पूर्व जन्म के सुकृती है। इस जीवन की हर क्रिया पूर्व जन्म का फल नहीं है जिस प्रकार पूर्व जन्म में कर्म करने की स्वतंत्रता थी वैसी ही इस जन्म में भी है। परमात्मा किसी की कर्म करने की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं करता—भले ही उस स्वतंत्रता के दुरुपयोग से कैसा ही बड़ा अनिष्ट उत्पन्न क्यों न होता हो।

ईश्वर नियम रूप है। उसके नियमों के अनुसार सब व्यवस्था चल रही है। चाहे कोई आस्तिक हो या नास्तिक, पापी हो या पुण्यात्मा, किसी के लिए आग ठंडी किसी के लिए गरम नहीं हो सकती। भक्त और भगवान के बीच सहायताओं के चमत्कारी वर्णनों की जो गाथायें प्रचलित हैं, वे श्रद्धा की महत्ता पुष्ट करने के लिए हैं, उनको वैज्ञानिक तथ्य की कसौटी पर नहीं कसना चाहिए। खंभ फाड़कर नृसिंह पैदा होने की आशा रखने वाले प्रहलादों को अवसर पर निराशा का ही आश्रय लेना पड़ेगा। बेचारे मृग, बकरे, खरगोश आदि निरीह पशु अनादि काल से सिंह व्याघ्रों से अपनी हड्डियां तुड़वाते रहे हैं पर आज तक उनकी रक्षा करने के लिए ग्राह को बचाने वाले भक्त वत्सल गरुड़ पर चढ़ कर नहीं आए। गौ माताओं का वंश कटते कटते समाप्ति की ओर जारहा है पर गोविन्द के दर्शन दुर्लभ हैं। फफक फफक कर एक एक दाने अन्न के लिए बंगाल के ३५ लाख मनुष्यों ने प्राण त्यागे पर नरसी के घर पर हुण्डी बरसाने वाले सांवलिया साहु ने कुछबोरी अन्न तक न बरसाया।

अनुचित आशा करने वालों को निराश होना पड़ता है। परमात्मा नियम रूप है, नियामक सत्ता है, नियंत्रण और व्यवस्था करने वाली शक्तियां को वह सजग रखता है। विश्व का संतुलन न बिगड़ने देने के लिए उसकी उत्पादक शक्ति काम करती है। वह जड़ चैतन्य को उपजाता है, उनके सक्षम रखने की व्यवस्था करता है और साथ ही उनके विनाश का हेतु भी बनता है, इस प्रकार वह ब्रह्मा विष्णु महेश की त्रिगुणात्मक शक्तियों द्वारा अपना परिचय देता है, वह समदर्शी है, निष्पक्ष है, निर्लिप्त है। वह सर्वोपरि है-फिर भी उसने सबको कर्म करने की पूर्ण स्वाधीनता प्रदान की है, हां कर्मफल की उसकी न्याय व्यवस्था से कोई अछूता नहीं बच सकता है। वह बड़ा दयालु है क्योंकि उसने हमें सब प्रकार के साधन और अवसर दिये हैं। वह बड़ा निर्दय है क्योंकि वह अनुचित क्रियाओं को न होने देने

के लिए कुकर्मियों के हाथों को लुंज पुंज नहीं कर देता। हम पसंद करें चाहे न करें पर उसका सृष्टि क्रम ऐसा ही है। वह चमत्कारों का केन्द्र है, उसकी सृष्टि का जर्रा जर्रा चमत्कार से परिपूर्ण है पर बाजीगरी के लिए उसकी व्यवस्थित क्रिया पद्धति में स्थान नहीं।

अब समय बहुत बदल गया है। वे परिस्थितियां न रहीं जिनमें किसी व्यक्ति को महापुरुष की श्रद्धा तभी प्राप्त हो सकती थी जब उसे देवताओं जैसा अलौकिक चमत्कारी सिद्ध करना आवश्यकता होता था। अब विचार क्षेत्र में काफी क्रान्ति हो चुकी है। अब हम किसी व्यक्ति के आदर्श से उसकी महानता को आकेंगे, और उसके व्यक्तित्व से प्रकाश ग्रहण करते हुए सन्मार्ग पर चलेंगे। इस दृष्टि से गान्धी जी हिमालय से उच्च और सूर्य से प्रकाशवान् हैं। विश्व संसार उन्हें इसी रूप में देखेगा। बापू का व्यक्तित्व इतना ऊंचा है उनके सिद्धान्त इतने महान हैं जिन पर बाजीगरी की, चमत्कारों की, अलौकिक कथाओं की, कोटि कोटि कल्पनाओं को निछावर करके फेंका जासकता है।

समुद्र का सारा पानी एक कौए की काली टांगों का सफेद नहीं कर सकता।

\+ + +

जीवन में कोई स्थिति ऐसी खराब नहीं है कि उसका सुधार न हो सके।

\+ + +

जीवन में तुम्हारी सबसे बड़ी भूल यह है कि तुम पर्याप्त दूर तक आगे नहीं देखते।

\+ + +

आकस्मिक घटना एक ऐसा शब्द है जिसका कोई अर्थ नहीं, कोई बात बिना कारण के हो ही नहीं सकती। + +

हमारे जीवन का व्यवहार ही हमारे हृदय की सचाई का एक मात्र प्रमाण है।

\+ + +

हम सत्य को प्राप्त करें।

(पं० चन्द्रशेखरजी शास्त्री)

उपनिषद् का वचन है "यदमिदम किंचत् सत्यम् (*All this is turth*) सत्य सर्वशक्तिमान, सर्व व्यापक और जीवन है। सत्य स्वयं चेतन है, स्वयमास्ति है। जो अनन्त है हमेशा से रहा है, अब भी है, और भविष्य में भी रहेगा। जो एक रस रह कर न कभी बदलता है न बिगड़ता है न व्यय होता है। न उत्पन्न होता है, न बढ़ता है, न नाश होता है। न उसका बचपन होता है न यौवन और न जरा। सत्य सभी जगह ठसा ठस भरा हुआ है। सत्य निर्भय है, पवित्र है और सर्व श्रेष्ठ है। शोक तथा दुःख से रहित आनन्द स्वरूप है। सत्य ही शक्ति है, सत्य ही मोक्ष है और सत्य का ज्ञान ही बन्धन मुक्ति है। सत्य ही विजय है। जब संसार शून्य में शयन करता है तब भी सत्य अपने गुणों से स्थिर, शांत, पूर्ण और जागृत रहता है। सत्य ही सर्वगुण है, पूर्ण अस्तित्व है, मान्य है, जागृति या चेतनता है। यह सारा संसारा सत्य से बना, सत्य में स्थित और सत्य में ही पुनः लय हो जायगा। सत्य ही ईश्वर है।

सत्य की सिद्धि जीवन का अमृत है। मनुष्य परोक्ष और अपरोक्ष गति से इसी सत्यामृत की चाह में दौड़ता आया है। संसार में जितने भी कार्य हो रहे हैं यदि उनमें गहराई तक घुसकर देखा जाय तो सभी इसी अपने 'अहम्' की क्षुधा या तृषा का निवारण करने के लिए पाये जांयगे। हम चाहे उन कार्यों को जानें या न जानें, व्यक्तिगत करें या सामूहिक परन्तु यथार्थ यह है कि उनका लक्ष्य इसी पूर्ण सत्य की सिद्धि करना है। वही अमृत है।

मनुष्यों की ईमानदारी की माप उनके कथन से नहीं, किन्तु उनके आचरण से होती है। +

पारिवारिक जीवन का सौभाग्य

(प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०)

सौभाग्य पारिवारिक जीवन में भी प्राप्त किया जा सकता है। माता के स्नेह, पिता के पथ प्रदर्शन, भाई की मृदुलता, बहिन की सच्ची सहानुभूति, पत्नि की सहृदयता, सेवा, और मूक प्रेम, छोटे बच्चों का वात्सल्य, इष्ट मित्रों का मनोरंजन, शिष्टता और सहायता--ये सब ऐसे देव दुर्लभ सुख हैं, जिन्हें हम इस पृथ्वी पर ही लूट सकते हैं। पारिवारिक जीवन के प्रधान अंग प्रेम पूर्वक स्मरण, पारस्परिक सद्भाव, मंगल कामना, एक दूसरे की सहायता, माता पिता का आशीर्वाद, पुत्र का स्नेह, भगनि का अभिमान, भाई का प्यार आदि हैं। परिवार एक पाठशाला है, एक शिक्षा संस्था है, जहां हमें स्वसंस्कार, नीति संयम, और आत्मसंस्कार के लिए उपयोगी निर्देश प्राप्त होते हैं।

अपने पारिवारिक सुख की वृद्धि के लिए यह स्मरण रखिये कि प्रत्येक व्यक्ति आत्मदमन के लिए प्रस्तुत रहे, अपने सुख की इतनी परवाह न करे, जितनी दूसरे की, व्यवहार में शिष्टता और उदारता रहे, सबके प्रति प्रसन्नता, स्नेह और कोमलता का व्यवहार रहे। द्वितीय गुण शिष्टता है। हम वैसा ही व्यवहार करें जैसा दूसरे से चाहते हैं। शिष्टता में विनय अथवा नम्रता भी सम्मिलित हैं। तीसरा गुण जो इनमें जोड़ा जा सकता है, वह प्रफुल्लता है। आप अपने परिवार में खूब हँसिये खेलिये क्रीड़ा कौतूहल कीजिए, परिवार में मनोरंजन के नए नए साधन जुटाइये। धर्म प्रवर्त्तक लूथर ने कहा है, "विनोद और साहस अर्थात् विचार पूर्ण विनोद मर्य्यादापूर्ण साहस वृद्ध और युवक के लिए उदासी की अच्छी दवा है।"

रूखापन जीवन का सबसे बड़ा शत्रु है। कई आदमियों का स्वभाव बड़ा नीरस, रूखा, शुष्क, निष्ठुर, कठोर और अनुदार होता है। उनका आत्मीयता का दायरा बहुत ही छोटा होता है। उस दायरे के बाहर के व्यक्तियों तथा पदार्थों में उन्हें कुछ दिलचस्पी नहीं होती, किसी के हानि लाभ उन्नति अवनति खुशी रंज, अच्छाई बुराई से उन्हें कोई मतलब नहीं होता। अपने अत्यन्त ही छोटे दायरे में स्त्री पुत्र, तिजोरी, मोटर मकान आदि में उन्हें थोड़ा रस जरूर मिलता है। शेष वस्तुओं के प्रति उनके मन में बहुत ही अनुदारतापूर्ण रुखाई होती है। कोई २ तो इतने कंजूस होते हैं कि अपने शरीर के अतिरिक्त अपनी छाया पर भी उदारता या कृपा नहीं दिखाना चाहते। ऐसे रूखे आदमी यह समझ ही नहीं सकते कि मनुष्य जीवन में कोई आनन्द भी है। अपने रूखेपन के प्रत्युत्तर में दुनियां उन्हें बड़ी रूखी, नीरस, कर्कश, खुदगर्ज कठोर और कुरूप मालूम पड़ती हैं।

रूखापना जीवन की सब से बड़ी कुरूपता है। रूखी रोटी में क्या मजा है, रूखे बाल कैसे भद्दे लगते हैं, रूखी मशीन में बड़ी आवाज होती है, पुर्जे जल्दी ही टूट जाते हैं। रूखे रेगिस्तान में कौन रहना पसन्द करेगा। प्राणिमात्र सरसता के लिए तरस रहा है। सौभाग्य के लिए सरसता, स्निग्धता की आवश्यकता है। मनुष्य का अन्तःकरण रसिक है, कवि है, भावुक है, सौन्दर्य उपासक है, कलाप्रिय है, प्रेममय है। मानव-हृदय का यही गुण है। सहृदयता का अर्थ कोमलता, मधुरता, आर्द्रता है, जिनमें यह गुण नहीं उसे हृदय हीन कहा जाता है। हृदय हीन के अर्थ है "जड़-पशुओं से भी नीचा।" नीरस व्यक्ति को पशुओं से भी नीचा माना गया है।

जिसने अपनी विचार-धारा और भावनाओं को शुष्क, नीरस और कठोर बना रक्खा है, वह मानव जीवन के वास्तविक रस का आस्वादन करने से वंचित ही रहेगा। उस वेचारे ने व्यर्थ ही जीवन धारण किया और वृथा ही मनुष्य शरीर को कलंकित किया। आनन्द का स्रोत

सरलता की अनुभूतियों में है। परमात्मा को आनन्द मय कहा गया है। क्यों? इसलिए वह सरस है, प्रेम मय है। श्रुति कहती है—'रसोवैसः' अर्थात् परमात्मा रस मय है। उसे प्राप्त करने के लिए अपने अन्दर वैसी ही लचीली, कोमल, स्निग्ध, सरस भावनाएँ उत्पन्न करनी पड़ती हैं।

पारिवारिक जीवन में आप अपने हृदय को कोमल, द्रवित, पसीजने वाला, दयालु प्रेमी और सरस बनाइये। संसार के पदार्थों में जो सरसता का सौंदर्य का अपार भंडार भरा हुआ है, उसे ढूँढ़ना और प्राप्त करना सीखिये। अपनी भावनाओं को जब आप कोमल बना लेते हैं तो आपके अपने चारों और अमृत झरता हुआ अनुभव होने लगता है। जब वस्तुओं पर दृष्टि डालिये। प्रत्येक वस्तु अपने २ ढंग की अनूठी है। वह अपने कलाकार की अमर कीर्ति का मूकवाणी द्वारा बड़ी ही भावुक भाषा में वर्णन कर रही है। मखमल सी घास, दूध के फेन से उज्ज्वल नदी नाले, हँसते हुए पुष्प, खिलौनों से सुन्दर कीट पतंग, माता सी दयालु गोएँ, भाई से साथी बैल, वफादार सेवक से घोड़े, स्वामी भक्त कुत्ते, आपानी खिलौनों से चलते फिरते पक्षी आप अपने चारों ओर देख सकते हैं। सिनेमा की सी चलती बोलती तस्वीरें सब तरफ घूम रही हैं, नाटक का सा अभिनय स्थान २ पर हो रहा है। प्रकृति के कोमल दृश्यों का कवित्व मय भावुकता के साथ यदि आप निरीक्षण करें तो सर्वत्र सौंदर्य की अजस्र धारायें बहती हुई दिखाई देंगी। तस्वीर सा यह सुन्दर संसार आपके दिल की मुरझाई हुई कली को हरी कर देने की परिपूर्ण क्षमता रखता है। भोले भाले मीठी मीठी बातें करते हुए बालक, प्रेम की प्रतिमायें, देवियां, अनुभव, ज्ञान, और शुभ कामनाओं के प्रतीक वृद्धजन—यह सब ईश्वर की ऐसी आनन्द मय विभूतियां हैं जिन्हें देखकर मनुष्य का हृदय कमल के पुष्प के समान खिल जाना चाहिए।

हनुमानजी की विशेषताएँ।

(श्री दीनानाथजी दिनेश)

अर्जुन कपिध्वज कहे जाते हैं। अर्जुन के झंडे पर हनुमानजी विराजते थे। अध्यात्मिक दृष्टि से विचार करने पर विदित होता है कि अर्जुन को वे गुण प्रिय थे, जिनके कारण हनुमान ने अमर ख्याति प्राप्त की—

> अतुलित बलधामं स्वर्ण शैलाभदेहम्।
> दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्॥
> सकल गुण निधानं वानराणमधीशं।
> रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि॥

हनुमानजी की स्तुति करते हुए प्रायः यह श्लोक पढ़ा जाता है। उनमें अनेक विशेषताएँ थीं—(१) बल अपार था (२) विशाल देह ब्रह्मचर्य से दीप्तिवान् थी (३) दुष्टों का दमन करने वाले थे (४) ज्ञानियों में अग्रगण्य थे (५) गुणवान थे (६) भगवान् के प्रिय भक्तों में से थे।

अर्जुन इन गुणों का अनुकरण करना चाहते थे और उन्होंने ये गुण प्राप्त भी कर लिए थे। इसी कारण अपनी ध्वजा का चिन्ह हनुमान लिया। योग ग्रन्थों में लिखा है—

"वायु स्थिर होने से मनुष्य मुक्त होता है।"

"प्राण चंचल हुआ, तो मन चंचल होता है, प्राण स्थिर होने से मन स्थिर हो जाता है।"

हनुमान वायुपुत्र प्रसिद्ध हैं। हनुमान् का चिन्ह धारण करने से स्पष्ट है कि अर्जुन ने वायु अर्थात् प्राणों पर विजय प्राप्त की थी। उसका अन्तःकरण निर्मल था, वायु की भाँति पवित्र था पर इन गुणों के रहते हुए भी वायु में चंचलता स्वभावतः होती है। अर्जुन का भी स्वभाव उसी प्रकार चंचल था और यही कारण हुआ कि वीर, चरित्रवान्, ज्ञान, और भक्त होते हुए भी अर्जुन चंचलता वश विषम मनः स्थिति में रहे।

साहस से विजय मिलती है।

(पं० शिवशंकरलाल त्रिपाठी, कानपुर)

मनुष्य के आस पास परिस्थितियों और मान्यताओं का एक वातावरण छाया रहता है, उसका भीतरी चित्त इस वातावरण से बहुत प्रभावित होता है तदनुसार वह उसी निर्धारित वातावरण की परधि के अन्दर सोचता विचारता और कार्य करता है।

कई बार निकटवर्ती वातावरण की यह परधि उपयुक्त नहीं होती, उसमें रह कर न तो उन्नति की गुंजायश होती है और न भविष्य को उज्वल बनाने की। उस परधि से बाहर जाकर उन्नति करने की बात कई व्यक्ति सोचते हैं पर साहस के अभाव में वे वैसा कर नहीं पाते। चिर संचित संस्कार एवं सहयोगियों का प्रतिरोध, उस उत्साह को ठंडा कर देते हैं जो मनुष्य के मनमें उन्नति करने के लिए उत्पन्न होता है। फल स्वरूप वह जहां का तहां रह जाता है।

जब हम संसार के महापुरुषों के जीवन विकाश पर सूक्ष्म दृष्टि पात करते हैं तब हमें पता चलता है कि—एक कार्य हर महापुरुष को करना पड़ा है, वह है "अपने चिर निर्मित वातावरण का निष्क्रमण" महात्मा गान्धी यदि राजकोट में अपने पैतृक कारोबार ही संभालते तो क्या वे वह सब कर सकते थे जो उन्होंने किया ? स्वामीदयानन्द अपनी पैतृक यजमानवृत्ति को करते तो क्या उन्होंने उतना सब किया होता ?

हिटलर के घर में भटियारे का पेशा होता था, मुसोलिनी के घर वाले मोचीगीरी से गुजर करते थे, शेक्सपियर के यहां कसाईगीरी होती थी, वाशिंगटन की माता लकड़हारिन थी, नेपोलियन के बापदादे चौकरी चाकरी करके पेट पालते आये थे। यदि यह लोग अपने पुराने वातावरण से ऊपर उठने का साहस न दिखा सके होते तो निश्चित था कि उन्हें भी अपने पूर्वजों की भांति गुजर बशर करते हुए किसी प्रकार जिंदगी पार करनी पड़ती।

असंख्यों व्यक्ति सचमुच बड़े प्रतिभाशाली होते हैं। उनके अन्दर उत्कर्ष की अटूट इच्छा और कठिनाइयों से लड़ने का दृढ़ साहस होता है। यदि उन्हें अवसर मिलता तो कुछ से कुछ बन सकते थे। पर हाय! वे अपनी चिर निर्मित परिधि का घेरा पार नहीं कर पाते। आगे बढ़ने की इच्छा करते हैं पर पैर आगे बढ़ाने का साहस नहीं कर पाते। संकोच, झिझक, डर, एवं आशंकाओं की जंजीरें उन्हें कस कर बांध देती है और आगे बढ़ने से रोक देती हैं। इस प्रकार कितने ही मनोहर पुष्प बिनाखिले ही अपनी झाड़ियों में मुर्झा जाते हैं।

मनुष्य जीवन महान है। वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार यह बहुत काल पश्चात् बड़ी कठिनाइयों के बाद, किसी विशेष उद्देश्य के लिए मिलता है। इसका समुचित उपयोग न करके भेड़ों के भुण्ड में यों ही आंखें मूँद कर चलते जाना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है। हर व्यक्ति को विचारना चाहिए कि वह अपने लिए और दूसरों के लिए अधिक से अधिक उपयोगी किस प्रकार होसकता है? अपने इस महान मानवजीवन को सफल किस प्रकार बना सकता है? अपनी शक्तियों का अधिक से अधिक लाभ किस मार्ग पर चल कर उठा सकता है? इन प्रश्नों के उत्तर के आधार पर उसे अपना जीवन प्रोग्राम बनाना चाहिए। 'जैसा कुछ चल रहा है सो ठीक है' ऐसी निर्बल भावनाएं रख कर मनुष्य जीवन की घड़ियों को किसी प्रकार काट तो सकता है पर अपना उत्कर्ष नहीं कर सकता, जीवन को सफल नहीं बना सकता, आत्मशान्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

हमें चाहिए कि जीवन सम्पत्ति का श्रेष्ठ तम सदुपयोग करें। उत्कर्ष का पथ निर्माण साहस के आधार पर होता है। जो बढ़ता है सो बाजी मारता है, जो लड़ता है सो जीतता है।

हम अभागे नहीं हैं।

अपने से बढ़ी चढ़ी स्थिति के मनुष्यों को देखकर हम अपने प्रति गिरावट के—तुच्छता के भाव लावें यह उचित नहीं। क्योंकि असंख्यों ऐसे भी मनुष्य हैं जो हमारी स्थिति के लिए तरसते होंगे और अपने मनमें हमें ही बहुत बड़ा भाग्यवान् मानते होंगे।

उन खानाबदोश गरीबों को देखिए जिनके पास रहने को घर नहीं, बैठने को जगह नहीं, बँधी हुई तिजारत या जीविका नहीं आज यहां हैं तो कल वहां दिखाई देंगे। रोज कुआ खोदना रोज पानी पीना। क्या इनकी अपेक्षा हम अच्छे नहीं है?

उन रोगियों को देखिए, जिनकी पीड़ाओं का कोई ठिकाना नहीं। दर्द, कष्ट, व्यथा, जलन, कसक, टीस, ताप, निर्बलता, के कारण जिनका रोम रोम छटपटाता है, धन का अपव्यय, दूसरों का अहसान, परिचर्या करने वालों की झुंझलाहट, आश्रितों की दुर्दशा एवं मृत्यु के भय के कारण जिनकी नाड़ियां संज्ञाशून्य होरही हैं, उनसे हमारी दशा कहीं अच्छी है।

उस वृद्ध पुरुषों को देखिए जिसका शरीर जीर्ण शीर्ण होगया है, अनिद्रा, खांसी, अपच, एवं अशक्ति के कारण जिन्हें अपना जीवन भार होरहा है। उनसे हम बुरे नहीं हैं।

उन दरिद्रों को देखिए जिनके पास न तन ढकने को कपड़ा है और न पेट भरने को रोटी, वर्षा में जिनकी झोंपड़ियां चुचाती हैं, त्यौहारों पर जिनके बच्चे पूड़ी पकवानों के लिए तरसते हैं, दवादारू के बिना जो बेमौत मर जाते हैं। क्या हम उनसे बुरी दशा में है?

उन अनाश्रित बालकों और विधवाओं को देखिए जिनके पास गुजारे का कोई सहारा नहीं, जो नाम मात्र की आमदनी से अपनी गुजर करते हैं। संरक्षण, आश्रय और सहायता के छिना जो अपने को लुटालुटा सा अनुभव करते हैं उनकी अपेक्षा क्या हम गिरी हुई स्थिति में हैं?

उन मानसिक शोक सन्ताप से जलते हुए मनुष्यों को देखिए, जिनका प्रेमी बिछुड़ गया है, जिनकी दुनियां लुट गई है, जिनके कलेजे में घाव होगये हैं, शक्ति से अधिक बोझ जिनके ऊपर धरा हुआ है, ऋण के बोझ से जो दबे जारहे हैं। उत्तर दायित्वों को पूरा करने की चिन्ता जिन्हें खाये जाती है, पग पग पर अपमान सहकर जिन्हें लहू के से घूंट पीने पड़ते हैं, भय से जिनका कलेजा धड़कता रहता है प्रतिष्ठा नष्ट होजाने की आशंका जिन्हें बेचैन बनाये रहती है, शरीर जिनका स्वस्थ है पर भीतर ही भीतर जो घुले जारहे हैं, उनकी अपेक्षा हम अधिक दुखी नहीं हैं।

उन अपाहिजों, अपूर्ण एवं अंगभंग मनुष्यों को देखिए जिनकी जीवन यात्रा दूसरों की दया पर निर्भर है। अंधे, लगड़े, लूले, गूंगे, बहरे, कोढ़ी, पागल आदि अनेकों प्रकार के असंख्य मनुष्य हमारी अपेक्षा कहीं अधिक गिरी हुई दशा में है।

उन आपत्ति ग्रस्त व्यक्तियों को देखिए जिनके ऊपर अचानक आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा है। बाढ़ के प्रवाह से, अग्निकाण्ड से, चोरी होजाने से, आक्रमण से, आंधी, तूफान, भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष आदि प्रकृति प्रकोपों से, दुर्घटना से, बीमारी, महामारी से, अकाल मृत्यु से जिनको असह्य आघात लगा और थोड़ी सी देर में कुछ से कुछ होगये। ऐसे आकस्मिक आघातों के प्रहार से जो किंकर्तव्य विमूढ़ होगये हैं, जिनके अन्तः-करण में हाहाकार मच रहे हैं, उनके कष्ट से हमारे कष्ट किसी प्रकार अधिक नहीं है।

अज्ञान और भ्रम के कारण कितने ही लोगों का जीवन कंटकाकीर्ण होरहा है, कुसंस्कार, दुर्भावना, कुविचार, बुरी आदत, मूर्खता, नीच वृत्ति, पाप वासना, तृष्णा, ईर्षा, घृणा, अहंकार व्यसन, क्रोध, लोभ, मोह आदि आन्तरिक शत्रुओं

के आक्रमण से जिन्हें पग पग पर परास्त एवं पीड़ित होना पड़ता है, उनकी अशान्ति की तुलना में हम अधिक अशान्त नहीं है।

अछूत, परिगणित, गुलाम, असभ्य, जंगली जातियों के लोगों के पास कितने सीमित कितने स्वल्प साधन होते हैं क्या हमारे पास उनसे भी कम साधन हैं?

जेल खाने, पागलखाने और शफाखाने में भरे हुए लोगों की अपेक्षा भी क्या हम अधिक दुर्दशा ग्रस्त है?

हम अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ावें तो प्रतीत होगा कि अधिकांश मनुष्य ऐसे हैं जो हमसे भी गई गुज़री दशा में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। जिन कष्ट और कठिनाइयों में होकर हम गुजर रहे हैं असंख्यों व्यक्तियों की कठिनाइयां उससे भी अनेक गुनी अधिक हैं।

जिन्हें हम अधिक सम्पन्न और सुखी समझते हैं वे भी हमारी ही तरह दुखी होंगे और अपने से अधिक सम्पन्नों को देखकर सोचते होंगे कि हम पिछड़े हुए, अभावग्रस्त और दुखी हैं। दूसरी ओर जो लोग हमसे पिछड़े हुए हैं वे हमारे भाग्य पर ईर्षा करते होंगे। सोचते होंगे अमुक व्यक्ति तो हमारी अपेक्षा बहुत अधिक सुखसाधन सम्पन्न है।

करोड़पति धनिक जो बीमारी और वृद्धावस्था से दुखी है, एक हट्टे कट्टे मजदूर को अपने से अधिक सौभाग्यशाली समझता है। एक कुसंस्कारी विद्वान की अपेक्षा सतोगुणी अशिक्षित अधिक सुख शान्ति मय जीवन व्यतीत करता है। गरीबी कोई बुरी बात नहीं है यदि होती तो अनेकों सन्त महात्मा धन दौलत को न अपना कर उसे क्यों अपनाते? कठिनाइयों का होना भी कोई बुरी बात नहीं यदि बुरी होती तो जितने भी महापुरुष हुए हैं सबने कठिनाई का जीवन स्वीकार क्यों किया होता?

हो सकता है कि हमें उतनी सुविधा और सम्पन्नता प्राप्त न हो जितनी कई दूसरों को प्राप्त है पर इसीलिए यह नहीं कहा जासकता कि हम दीन दुखी या अभागे हैं क्योंकि कितने ही व्यक्ति ऐसे मौजूद हैं जो हमें भी ऊँची श्रेणी का भाग्यवान मानते होंगे। बड़ा और छोटा, गरीब और अमीर, विपन्न और सम्पन्न होना कोई वास्तविक बात नहीं है। यह दूसरों की तुलना में निर्धारित की जाती है। छोटी लकीर से बड़ी लकीर—'बड़ी' कही जायगी किन्तु वह बड़ी लकीर, उससे बड़ी लकीर की तुलना में 'छोटी' रह जायगी, इस प्रकार एक ही लकीर तुलना की दृष्टि से एक अवसर पर बड़ी और दूसरे पर छोटी ठहरती है। यही बात मनुष्य की है। तुलना की दृष्टि से ही वह अपने को अभागा और सौभाग्यशाली मानता है।

हम अपने को अभागा क्यों मानें? दीन, दुखी, अभाव ग्रस्त या पिछड़ा हुआ क्यों समझें? जब अनेकों से अनेक अंश में हम सुसम्पन्न और आगे बढ़े हुए हैं तो अकारण दुख न होने पर भी दुखी होने का कोई कारण नहीं। हमें तृष्णा का हड़कम्प उठा कर शान्ति मय जीवन को अशान्त बनाने की कोई आवश्यकता नहीं। हमें चाहिए कि जो प्राप्त है उसमें संतुष्ट रहें और अधिक प्राप्त करने को अपना स्वाभाविक कर्तव्य समझ कर उसके लिए प्रयत्न करें।

किसी के उपदेश की सत्यता की जांच लोग उसके आचरण से ही किया करते हैं। इसलिए यदि ज्ञानी पुरुष स्वयं कर्म न करेगा, तो वह सामान्य लोगों को आलसी बनाने का एक बहुत बड़ा कारण हो जायेगा।

\+ + +

मनुष्य को अपने उद्धार के लिए स्वयं अपना दोष या मूर्खता स्वीकार करना अनिवार्य है।

\+ + +

असन्तोष ही ऐश्वर्य का मूल है।

\+ + +

आध्यात्मिकता की कसौटी।

(श्री दौलतराम कटरहा, बी० ए० दमोह)

मानव-समाज की नींव सहयोग है। आज का मानव-जीवन आवश्यकताओं की दृष्टि से इतना विस्तृत है कि कोई भी व्यक्ति अपनी समस्त आवश्यकताओं को स्वयं ही पूर्ण नहीं कर सकता, अतः उसे दूसरों से सहायता लेनी ही पड़ती है। मनुष्य को इस सहायता को प्राप्त करने के बदले दूसरों को भी कुछ सहायता देनी पड़ती है और इस तरह समाज के सभी मनुष्यों के कार्य चलते हैं। जो व्यक्ति समाज की सेवा-सहायता लेते समय तो खुशी खुशी उसे स्वीकार कर लेता है किन्तु उसके बदले में दूसरों की सेवा करने में वैसा ही उत्साह नहीं दिखाता वह व्यक्ति निम्न कोटि का व्यक्ति है। जो केवल दूसरों की सेवा-सहायता लेना ही लेना जानता है वह मुफ्त खोर और चोर है, किन्तु जो व्यक्ति समाज से जितना लेता है उससे कई गुना समाज को दे देता है वह व्यक्ति महान है। क्योंकि ऐसा व्यक्ति ही आगे चलकर अपनी आध्यात्मिक उन्नति करते करते इतना उच्च हो सकता है कि कभी वह समाज से कुछ भी न ले पर फिर भी समाज की सेवा करता रहे और इस तरह निष्काम कर्म करने की सर्वोच्च आध्यात्मिक स्थिति को पहुंच जाय।

कोई भी मनुष्य इसलिए बड़ा नहीं कि वह अधिक से अधिक सांसारिक पदार्थों का उपभोग कर सकता है। अधिक से अधिक ऐश्वर्य जुटाने वाले तो बहुधा लुटेरे होते हैं। वे संसार को जितना देते हैं उससे कहीं अधिक उससे छीन लेते हैं। मनुष्य तो केवल अपनी सुन्दर भावनाओं के कारण ही बड़ा गिना जाता है।

यदि एक भंगी समाज सेवा की दृष्टि से अपना कार्य करता होवे और मुझमें किसी तरह बुरी भली वस्तु देकर समाज से पैसा ले लेने की ही भावना होवे तो वह भंगी मुझसे श्रेष्ठ होगा। दो व्यक्ति समाज की एक से उत्साह से सेवा करें, एक बदले में प्राप्त करने की भावना से और दूसरा निस्वार्थ या निष्काम भावना से तो निष्काम भावना से कार्य करने वाला व्यक्ति सकाम कर्म करने वाले व्यक्ति से श्रेष्ठ होगा।

हम मनुष्य की सेवा-शक्ति को दृष्टि में रख कर ही उसे महान नहीं कह सकते। उसकी महानता की कसौटी यह नहीं हो सकती। क्योंकि इसके द्वारा परखे जाने पर तो अनेकों पशु-पक्षी भी उसकी श्रेणी में आ विराजेंगे। सभी जानते हैं कि चूहे, शृगाल, सुअर, कुत्ते, कौए, गिद्ध आदि पशु पक्षी भी सड़े गले और मल-मूत्रादि पदार्थों को खाकर वातावरण को शुद्ध कर देते हैं। यह भी प्रकट है कि सड़े गले पदार्थों को शीघ्र ही हटा देने का जो उत्साह इन पशु-पक्षियों में पाया जाता है वह प्रायः हम मनुष्य कहलाने वालों में भी नहीं पाया जाता अतएव न तो कर्म का परिणाम और न कर्मोत्साह ही महानता की कसौटी हो सकता है। अतः मनुष्य की परख उसके कार्य के परिमाण से नहीं किन्तु उस कार्य को प्रेरणा देने वाली भावनाओं से की जानी चाहिए। जैसा मनुष्य का भाव हो उसे वैसा ही समझना चाहिए। भगवान कृष्ण ने भी तो कहा है कि "सभी मनुष्यों की भावना (श्रद्धा) उनके अन्तःकरण के अनुरूप होती है तथा यह पुरुष श्रद्धामय है इसलिए जो पुरुष जैसी श्रद्धा वाला है वह स्वयं भी वही है।"

बहुधा यह देखा जाता है कि लोग निष्काम भावना से कार्य करने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं क्योंकि सकाम कर्म करते समय उन्हें अपनी इच्छाओं द्वारा जो प्रेरणा मिलती है वह निष्काम कर्म करते समय नहीं मिलती। अतः निष्काम कर्म करने के स्थान में सकाम कर्म करते समय मनुष्य अधिक उत्साह से कार्य कर सकता है। इस सम्बन्ध में भगवान कृष्ण का मत है कि कर्म की प्रेरणा कभी न्यून न होनी चाहिए

अर्थात् करणीय-कर्मों के प्रति मनुष्य का उत्साह कदापि कम न होना चाहिए। पहले हमें करणीय कर्मों अर्थात् कर्त्तव्य-कर्मों में अच्छी तरह प्रवृत्त होना सीखना है भले ही इसके लिए हमें सकाम भावनाओं की प्रेरणा की आवश्यकता हो। पश्चात् किसी भी कर्त्तव्य कर्म को पूर्ण लगन और तल्लीनता से करते हुए यदि हम उस कर्त्तव्य कर्म की प्रेरणार्थक भावनाओं का शोधन एवं संस्कार कर सकते हैं तो ठीक है अन्यथा हमें सकाम भाव से ही करणीय कर्म करते जाना चाहिए। अर्थात् यदि उस कर्त्तव्य कार्य को निष्काम भाव से करने के प्रयत्न में हमारे कार्य में शिथिलता आ जाती है तो हमें निष्काम कर्म के स्थान में उस कार्य को पूर्ववत् सकाम भावना से ही करना चाहिए।

भगवान कृष्ण कहते हैं 'हे भारत, कर्म में आसक्त हुए अज्ञानी जन जैसे कर्म करते हैं, वैसे ही अनासक्त हुआ विद्वान भी लोक-शिक्षा को चाहता हुआ कर्म करे। ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि कर्मों में आसक्ति वाले अज्ञानियों की बुद्धि में भ्रम अर्थात् कर्मों में अश्रद्धा उत्पन्न न करे किन्तु स्वयं भी योग-युक्त होकर सब कर्मों को अच्छी प्रकार करता हुआ उनसे भी वैसे ही करावे'—गीता ३. २५. २६। इससे स्पष्ट है कि भगवान यह नहीं चाहते कि हम लोग लोक–हितकारी कर्मों को किसी प्रकार त्याग दें। उनकी आज्ञा है कि प्रत्येक अनासक्त पुरुष को उसी उत्साह और तीव्रता से कार्य करना चाहिए जिस तीव्रता से कि मोह–लोभ, ममता की प्रेरणा से अज्ञानी जन कार्य किया करते हैं। वह कभी उन्हें ऐसा उपदेश न दे कि उन्हें कर्त्तव्य–कर्मों के प्रति आलस्य उत्पन्न होवे।

ईश्वर और स्वयं अपने प्रयत्न के अतिरिक्त किसी में विश्वास मत करो। दोनों को कभी पृथक भी मत करो।

ज्ञानचर्चा के आठ भेद।

(स्वामी सत्यभक्त जी)

ज्ञान किस प्रकार बढ़ता है। इसके आठ भेद हैं (१) सुनना (२) पूछना (३) पढ़ना (४) विस्तारण (५) विचारण (६) आत्म निरीक्षण (७) निर्माण (८) उपदेश ग्रहण।

सुनना ज्ञान प्राप्ति का प्रथम द्वार है। व्याख्यान सुनना, शास्त्र सुनना आदि भी तप है। जानने की इच्छा से नई नई बातें दूसरों से पूछना भी ज्ञानचर्चा है। इस तप के लिए निरपक्षता और जिज्ञासा जरूरी है। परीक्षा लेने के लिए पूछना नाम का तप नहीं है। पूछना पढ़ने का एक अंग है सुनना साधारण है पर पूछने का बहुत महत्व है। जिसे पूछना नहीं आया समझ लो कि उसे ज्ञान नहीं मिला। पूछने से पता चलता है कि किसी न चीज को अच्छी तरह समझा है या नहीं। ज्ञान प्राप्ति के लिए पठन पाठन स्वाध्याय तप के समान हैं।

विस्तारण तप है। कोई बात पढ़कर सुनना लिखना फैलाना आदि विस्तारण के अन्तर्गत है। महात्माओं के उपदेशों का संग्रह करना भी विस्तारण तप है पर विस्तारण निरर्थक न हो, नाम के पिष्ट पेषण आदि करके कागज काला किया गया हो तो वह तप नहीं है।

विचारण, चिन्तन करना, पाये हुए ज्ञान का अनुभव और तर्क द्वारा परीक्षण करना आदि भी तप हैं। इसके द्वारा ज्ञान अन्तर्मुख होता है। चिंतन द्वारा ज्ञान अपनी चीज बन जाता है। पाये हुए ज्ञान के आधार पर अपने को देखना, निष्पक्षता से अपने गुण दोषों का विचार करना आत्म-निरीक्षण है। आत्मनिरीक्षण के बाद जगद्धित के लिए ग्रन्थ रचना की जाती है। यह निर्माण तप है। अपने अनुभव और आत्मशुद्धि के आधार पर जगत् को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा करना उपदेश है।

महात्मा गान्धी की

सायंकालीन प्रार्थना।

रघुपति राघव राजाराम। पतित पावन सीताराम।
अल्ला-ईश्वर तेरे नाम। सबको सन्मति दे भगवान।

बौद्ध मन्त्र—

नमो हो रेंगे क्यो

(सत् धर्मके प्रवर्त्तक भगवान् बुद्धको नमस्कार करता हूं)

उपनिषद् मन्त्र—

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्

(इस जगत् में जो कुछ भी जीवन है वह सब ईश्वर का बसाया हुआ है। इसलिए तू ईश्वर के नाम से त्याग करके यथाप्राप्त भोग किया कर। किसीके धनकी वासना न कर)

यं ब्रह्मावरुणेन्द्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति य सामगाः ध्यानिवस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणाः देवाय तस्मै नमः।

(ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और पवन दिव्य स्तोत्रों से जिसकी स्तुति करते हैं, सामवेद का गान करने वाले मुनि अङ्ग, पद, क्रम और उपनिषत् सहित वेदों से जिसका स्तवन करते हैं, योगी जन ध्यानस्थ होकर ब्रह्ममय मन द्वारा जिसका दर्शन करते हैं और सुर तथा असुर जिसकी महिमा का पार नहीं पाते, मैं उस परमात्मा को नमस्कार करता हूं)

गीता, अध्याय २—

अर्जुन उवाच

स्थित प्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्।५४

हे केशव! स्थितप्रज्ञ अथवा समाधिस्थ के क्या लक्षण होते हैं? स्थितप्रज्ञ कैसे बोलता, बैठता और चलता है?

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्
आत्मन्येवा त्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञः तदोच्यते॥ ५५

हे पार्थ! जब मनुष्य मनमें उठती सभी कामनाओं का त्याग कर देता है और आत्मा द्वारा आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है, तब वह स्थितप्रज्ञ कहलाता है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृहः
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥५६

दुखसे जो दुखी न हो, सुखकी इच्छा न रखे, और राग, भय और क्रोध से रहित हो, वह स्थिर बुद्धि मुनि कहलाता है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहः तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥५७

सर्वत्र राग रहित होकर जो पुरुष शुभ या अशुभ की प्राप्ति में न हर्षित होता है, न शोक करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।

यदा संहरते चायं कूर्मोङ्गानीव सर्वशः
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्य स्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥५८

कछुआ जैसे सब ओर से अङ्ग समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियों को उनके विषयों से समेट लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर कही जाती है।

विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः
रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते॥ ५९॥

देहधारी जब निराहार रहता है तब उसके विषय मन्द पड़ जाते हैं, परन्तु रस नहीं जाता। वह रस तो ईश्वर का साक्षात्कार होने से ही शान्त होता है।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥ ६०॥

हे कौन्तेय! चतुर पुरुष के उद्योग करते रहने पर भी इन्द्रियां ऐसी प्रथमनशील हैं कि वे उसके मनको भी बलात्कार से हर लेती हैं।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ ६१

इन सब इन्द्रियों को वशमें रखकर योगी को

सुझमें तन्मय हो रहना चाहिये, क्योंकि अपनी इन्द्रियां जिसके वशमें हैं, उसकी बुद्धि स्थिर है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥६२

विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष को उनमें आसक्ति उत्पन्न होती है, आसक्ति से कामना होती है और कामना से क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६३

क्रोध से मूढ़ता उत्पन्न होती है, मूढ़ता से स्मृति भ्रान्त हो जाती है, स्मृति भ्रान्त होने से ज्ञान का नाश हो जाता है और जिसका ज्ञान नष्ट हो गया वह मृतक-तुल्य है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ ६४

परन्तु जिसका मन अपने अधिकार में है और जिसकी इन्द्रियां रागद्वेष रहित होकर उसके वशमें रहती हैं, वह मनुष्य इन्द्रियों का व्योपार चलाते हुए भी चित्त की प्रसन्नता प्राप्त करता है।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते
प्रसन्नचेतसोह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥६५॥

चित प्रसन्न रहने से उसके सब दुःख दूर हो जाते हैं। जिसे प्रसन्नता प्राप्त होती है, उसकी बुद्धि तुरंत ही स्थिर हो जाती है।

नास्तिबुद्धिरयुक्तस्य नचायुक्तस्य भावना
न चाभावयतः शान्ति रशान्तस्य कुतःसुखम् ॥६६

जिसे समत्व नहीं उसे विवेक नहीं। जिसे विवेक नहीं उसे भक्ति नहीं। और जिसे भक्ति नहीं उसे शान्ति नहीं है। और जहां शान्ति नहीं, वहां सुख कहां से हो?

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ ६७ ॥

विषयों में भटकानेवाली इन्द्रियों के पीछे जिसका मन दौड़ता है उसका मन, जैसे वायु नौकाको जल में खींच ले जाता है वैसे ही उसकी बुद्धिको जहां चाहे खींच ले जाता है।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्य स्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६८

इसलिए हे महाबाहो ? जिसकी इन्द्रियां चारों ओर से विषयों से निकलकर अपने वशमें आ जाती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥६९

जब सब प्राणी सोते रहते हैं, तब संयमी जागता रहता है, जब लोग जागते रहते हैं तब ज्ञानवान मुनि सोता रहता है।

आपूर्य्यमाणमचल प्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्
तद्वत्कामा यं प्रविशंति सर्वे
स शांतिमाप्नोति न कामकामी ॥७०

नदियों के प्रवेश से भरते रहने पर भी जैसे समुद्र अचल रहता है, वैसे ही जिस मनुष्य में संसार के भोग शान्त हो जाते हैं, वही शांति प्राप्त करता है, न कि कामना वाला मनुष्य।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः सशांतिमधिगच्छति ॥ ७१

सब कामनाओं का त्याग करके जो पुरुष इच्छा, ममता और अहङ्कार रहित होकर विचरता है वहीं शांति पाता है।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति
स्थित्वास्या मन्तकालेऽपि ब्रह्म निर्वाणमृच्छति ॥७२

हे पार्थ ! ईश्वर को पहचानने वाले की स्थिति ऐसी होती है। उसे पाने पर फिर वह मोह के वश नहीं होता और यदि मृत्युकाल में भी ऐसी ही स्थिति टिकी रहे, तो वह ब्रह्मनिर्वाण पाता है।

एकादश व्रत—

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असंग्रह,
शरीरश्रम अस्वाद सर्वत्र भयवर्जन,
सर्वधर्मी समानत्वस्वदेशीस्पर्शभावना
ही एकादश सेवावी नम्रत्वेव्रतनिश्चये।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शारीरिक श्रम, अस्वाद, सब जगह भयका त्याग

सब धर्मों के साथ समान भाव, स्वदेशी धर्मका पालन, स्पर्शास्पर्श भावनाका त्याग—इन ग्यारह व्रतों को पालन करने का मैं नम्रतापूर्वक निश्चय करता हूं।

कुरान की आयत—

अऊज़ु बिल्लाहि मिनश् शैत्वानिर रजीम् ।
बिस्मिल्लाहिर् रहमानिर् रहीम् ॥
अलहम्दु लिल्लाहि रब्बिल् आलमीन् ।
अर रहमानिर् रहीमि मालिकी यौमिद्दीन् ॥
ईयाकं, नअबुदु व ईयाक नस्तईन् ।
इह् दिनस्, सिरात्वल् मुस्तकीम् ॥
सिरात्वल् लज़ीन अनूअम्त अलै हिम् ।
गैरिल मग़ दूबि अलै हिम् वल्द् द्वाल्लीन् ॥

'मैं पापात्मा शैतान के हाथों से अपने को बचाने के लिए परमात्मा की शरण लेता हूं। हे प्रभो, तुम्हारे नाम का ही स्मरण करके मैं सारे कामों का आरम्भ करता हूं। तुम दया के सागर हो, तुम कृपामय हो। तुम अखिल विश्वके पालनहार हो। तुम्हीं मालिक हो। मैं तुम्हारी मदद मांगता हूं। आखिरी न्याय देने वाले तुम ही हो। तुम मुझे सीधा ही रास्ता दिखाओ। उन्हीं को चलने का रास्ता दिखाओ, जो तुम्हारी कृपादृष्टि पाने के काबिल हो गये हैं। जो तुम्हारी अप्रसन्नता के योग्य ठहरे, जो गलत रास्ते से चले हैं उनका रास्ता मुझे मत दिखाओ।

जरतुश्ती गाथा—

मज़दा अत मोइ वहिश्ता। स्रवा ओस्त्रा श्योथना चा वओचा। ता—तू वहू मनघहा। अशाचा इषुदेम स्तुतो। दमा का अथ्रा अहूरा फेरषेम्। वस्ना हइ श्येम दाओ अहूम्।

ऐ हारमज्द, सर्वोत्तम धर्म के वचन और कर्म के विषय में मुझे बता जिससे मैं सच्ची राहपर रह सकूँ और तेरी ही महिमा गा सकूँ। तू अपनी इच्छा के अनुसार मुझे चला। मेरा जीवन चिर नूतन रहे और वह मुझे स्वर्ग सुखका दान करे।

बापू की वाणी।

हैवान की सभ्यता

यह पागलपन जो दिनों दिन अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाता जा रहा है, और फिर उनको पूरा करने के लिए दुनिया के कोने कोने को खून से खूब रंग रहा है, मुझे यह पागलपन ना पसन्द है। अगर यही आज की सभ्यता है तो मैं कहूंगा कि यह इंसान की नहीं हैवान की सभ्यता है।

वह दिन आ रहा है जब कि वे लोग जो आज अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाने के लिए पागल हो गये हैं, वे अपना कदम पीछे हटायेंगे और गंभीरता से सोचेंगे—"यह हमने क्या किया? सभ्यताएँ आई हैं और चली गई हैं और बराबर मेरी इच्छा हुई कि मैं पूछूँ "हमें क्या मिला? पिछले ५० वर्ष के आविष्कार और खोज के बावजूद हमारी नैतिकता में एक अणुमात्र परिवर्तन भी नहीं हुआ।

कर्मयोग का महत्व

भगवान् ने मनुष्य को कर्म करके अपना जीवन बसर करने के लिए बनाया है। जो कर्म नहीं करता और सम्पत्ति का उपभोग करता है वह चोर है। अगर हम अपनी रोटी के लिए मेहनत करें, केवल रोटी के लिए, तो बहुत काफी उत्पादन होगा, बहुत सा समय भी बच जायगा तब न रोग होगा न दरिद्रता। मनुष्य काम करेगा, मगर वह काम विनाश का नहीं होगा। वह काम प्रेम का होगा, सृजन का होगा। उस समय न कोई बड़ा होगा, न छोटा, न कोई अमीर होगा, न गरीब, न कोई सवर्ण होगा, न शूद्र सभी उस भगवान् के मजदूर होंगे। सभी उनके चाकर होंगे और उनके प्रेम के लिए मजदूरी करेंगे। कर्मयोग का महत्व तो कहाँ तक कहा जाय। अगर मैं भगवान् बुद्ध से बातें कर सकता

तो पूछता कि आपने ध्यान योग के बजाय कर्म-योग का महत्व क्यों नहीं बताया? अगर मैं तुकाराम और ज्ञानदेव से मिलूँ तो भी उनसे यही सवाल पूछूँ?

व्यक्तित्व और मानवता

जब मैं रूस की ओर देखता हूं, जहां मशीन की सभ्यता ने नयारूप ले लिया है तो मेरा मन नहीं भरता। बाइबिल के शब्दों में—"क्या लाभ हुआ अगर किसी आदमी ने सारी दुनिया जीत ली मगर अपनी आत्मा को हार बैठा।" इससे क्या फायदा कि आदमी ने अपना व्यक्तित्व और अपनी आदमीयत खो दी और महज मशीन का पुर्जा बन गया। मैं चाहता हूं कि हर आदमी पूर्णतः विकसित हो। पशु में आत्मशक्ति निद्रित रहती है और वह शरीर बल के अलावा कोई बल नहीं जानता मनुष्य का सम्मान अधिक ऊँचे नियम का—आत्मा की शक्ति का—अनुसरण करने का तकाजा करता है।

आत्म विश्वास मेरा सहारा

यह तो वास्तव में विश्वास है जो हमें तूफानों के पार ले जाता है। यह विश्वास है जिसके सहारे हम समुद्रों को लांघ सकते हैं और पहाड़ों को उखाड़ सकते हैं। यह विश्वास अपने हृदय में रहने वाले भगवान् की चेतना के अलावा और कुछ नहीं है। जिसमें यह विश्वास है, उसे फिर कुछ नहीं चाहिए। बिना विश्वास के यह सारी सृष्टि एक क्षण में नष्ट हो जायगी। विश्वास कोई नाजुक फूल नहीं जो जरा से तूफानी मौसम में कुम्हला जाय। विश्वास तो अपरिवर्तन शील हिमालय की तरह है। कोई तूफान हिमालय को हिला नहीं सकता। मैं चाहता हूं कि आप में से हर एक भगवान् में वह अदम्य विश्वास जगा ले।

आशावाद अमोघ शस्त्र

मैं तो अदम्य आशावादी हूं और मेरी आशाओं का आधार यह है कि मुझे चरम विश्वास है कि अहिंसात्मक शक्तियों का विकास किसी भी सीमा तक हो सकता है और इसी लिए मैंने अपनी आशाएँ कभी नहीं खोईं। बहुत ही निराशा और अंधकार के क्षणों में भी मेरे मन में आशा का प्रकाश जलता रहा है। मैं स्वयं उस आशा के प्रकाश को बुझाने में असमर्थ हूं। मेरे अन्दर पराजय की कोई भाषा नहीं है। मैं दुनिया को प्रसन्न करने के लिए ईश्वर से विश्वासघात नहीं कर सकता।

प्रेम की साधना

मैं इसे नम्रता से स्वीकार करता हूं कि चाहे मैं उतना सफल न होऊँ लेकिन मैं अपने व्यक्तित्व के रेशे २ को प्रेम की साधना में डुबोना चाहता हूं। मैं अपने प्रभु का साक्षात्कार करने के लिए व्यग्र हूं। मेरा प्रभु सत्य स्वरूप है लेकिन अपनी साधना के प्रारंभ में ही मैंने पहचान लिया था कि अगर मुझे जीवन का चरम सत्य पाना है तो मुझे प्रेम हुकूमत के सामने सर झुका देना होगा। हमें अपने प्रेम का विस्तार करना चाहिए। हमें अपने गांव को प्यार करना चाहिए, फिर अपने जिले को प्यार करना चाहिए, फिर देश, और अन्त में विश्व प्रेम में अपने आपको लीन कर देना चाहिए। मेरे पास तो प्रेम के अतिरिक्त किसी पर भी किसी प्रकार का अधिकार नहीं है। प्रेम देता है, कभी कुछ माँगता नहीं, प्रेम सदा दुःख सहता है, कभी दुःख नहीं देता, कभी बदला नहीं लेता। जहाँ प्रेम है, वहीं भगवान् है।

प्राप्ति के आनन्द की अपेक्षा प्रयत्न का आनन्द श्रेष्ठ है।

+ + +

जो लोग पीड़ा अनुभव नहीं कर सकते वे इस योग्य भी नहीं होते कि आनन्द का अनुभव कर सकें।

+ + +

तुम्हारा गुप्त रेडियो।

(श्री विश्वमित्रजी वर्मा इन्दौर)

बाह्य स्पर्श के कारण कम्पन उत्पन्न होते ही सदा तत्काल इनका असर अन्तर मन पर नहीं पड़ता और बोध भी नहीं होता-जब कोई साधारण विचार बाहर से हमारे मनमें आता है तो तत्काल उसका ज्ञान हमें नहीं होता-परंतु क्रमीश इनका प्रभाव हम पर वैसा ही होता है जैसा सूर्य, वर्षा, खाद का असर उस बीज पर होता है जो पृथ्वी में दबा पड़ा हुआ है। पहले पहल उन कम्पनों का कोई दृष्टिगोचर परिणाम नहीं होता जो उस बीज पर विहार कर रहे हैं किन्तु उसके अन्तर में एक ऐसा मन्द स्पन्दन होता रहता है जो शनैः शनैः प्रबल होते होते इतना तीव्र हो जाता है कि वह उस बीज के छिलके को फाड़कर नन्हीं नन्हीं जड़ों को निकालता है और उसका विकास करता है।

ठीक ऐसी ही गति मन की भी है-प्रज्ञा, अन्तर में धीरे धीरे स्फुरित होती रहती है। बाह्य स्पर्शों का बाह्य ज्ञान होने के पूर्व हमारे अन्तर में एक ऐसी स्फुरण हो रही है जिसका हमें मानसिक ज्ञान नहीं है। किसी महापुरुष की संगति से जब हम लौटते हैं तो हमारा मन मानसिक महाप्रवाह के साथ-अर्थात् उस महापुरुष के तेजस् मण्डल के साथ, पहले से अधिक सन्निहित होकर आता है। पहले हमारा मन महापुरुष की संगति में प्रवेश करते समय उसके तेजोमण्डल अथवा विचार प्रवाह की परिधि के इतने समीप नहीं होता जितना कि सत्संग से लौटते समय होता है। अतः हमारे अन्तर में तथा हमारे चारों ओर वायुमण्डल में—आकाश में स्थित संकल्प के परमाणु उत्तेजित हो जाते हैं और हमारे मन को उन्नति में सहायता मिलती है। हमारे मन की उन्नति बहुत कुछ बाह्य स्पर्श से हो सकती है।

विचार शक्ति शनैः शनैः बढ़कर हमारे वश में आती है और उसका उपयोग विशेष प्रयोजनों की सिद्धि के निमित्त किया जा सकता है। आजकल प्रायः प्रत्येक व्यक्ति 'बेतार का तार' का नाम जानता है और आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश करते ही उसकी यह आन्तरिक कामना रहती है कि वह किसी स्थूल यंत्र के बिना अपने मानसिक रेडियो द्वारा ही विचार प्रेषण कर सके और डाक अथवा तार की सहायता के बिना ही अपने दूरस्थ मित्रों अथवा कुटुम्बियों से घर बैठे ही वार्तालाप किया करे तो बड़ा ही आनन्द आवेगा। बहुतों का यह विचार हुआ करता है कि थोड़े प्रयत्न से ही साधन की सिद्धि प्राप्त हो सकती है किन्तु जब वे अपने प्रयत्न को सर्वथा व्यर्थ पाते हैं तो आश्चर्य होता है। स्पष्ट बात तो यह है कि संकल्प भेजने के लिए शक्ति प्राप्त करने के पूर्व वे लोग मनन करने की शक्ति प्राप्त करलें। विचार की तरंगें स्थानान्तर भेजने के लिए स्थिर मनन करने की शक्ति प्राप्त करना आवश्यक है। बहुतों की निर्बल और चपलवृत्ति के कारण संकल्पों से केवल अस्थायी कंपन उत्पन्न होते हैं जो क्षण भर में उत्पन्न होकर पुनः विलीन हो जाते हैं तथा उनका चित्र भी क्षण भंगुर होता है अतः जब तक मननशक्ति दृढ़ न होगी, विचारों का कंपन भी स्थायी नहीं होगा—मनुष्य चाहे कितना पढ़े, उसकी मानसिक उन्नति उसके विचारों की न्यूनाधिकता के अनुपात से होगी। जब तक वह उस विचार को लेकर उस पर कुछ समय तक मनन न करे तब तक उससे क्षणिक लाभ और बहुत थोड़ा लाभ होगा। अभ्यास से ही पूर्णता अथवा सिद्धि प्राप्त होती है। यह कथन मनके लिए उतना ही सत्य है जितना कि देह के लिए खाने से पेट भरता है, किन्तु जैसे जब तक आहार पचे नहीं तब तक वह शरीर के लिए व्यर्थ होता है। उसी प्रकार मन भी पठन द्वारा भरा जा सकता है किन्तु जब तक उसका मनन न हो तब तक पाठ पचकर मानसिक प्रकृति के साथ एकीभूत नहीं होता इसीसे मन की वृद्धि नहीं

होतीं और सफलता भी नहीं प्राप्त होती। अतः यदि हम चाहते हैं कि हमारा मन उत्कृष्ट हो और हमारी बुद्धि विकसित हो तो हमें पढ़ना कम, और मनन अधिक करने की आवश्यकता है। पांच मिनट तक पढ़कर दस मिनट तक मनन करना चाहिए।

संकल्प को स्थानान्तर भेजने की दो रीतियां हैं। एक तो आधिभौतिक और दूसरी आधिदैविक। पहली का संबंध मन और मस्तिष्क से है, और दूसरी का कार्य केवल मन से होता है। संकल्प उत्पन्न होकर प्रथम मानसिक क्षेत्र में, फिर एस्ट्रल (सूक्ष्म) क्षेत्र में कंपन उत्पन्न करते है—इससे ईथर व आकाश तत्व में और फिर स्थूल मस्तिष्क में तरंगें उत्पन्न होती हैं। इन मानसिक कम्पनों से आकाश तत्व प्रभावित होता है और तरंगें आकाश तत्व द्वारा जाती जाती दूसरे के मस्तिष्क में पहुंच जाती हैं और प्रेषक व्यक्ति के मस्तिष्क से दूसरे व्यक्तिके मस्तिष्क तक पहुंच जाती है और उसके स्थूल तथा आकाश तत्व के कणों में कम्पन उत्पन्न करते हैं। मस्तिष्क में एक छोटी सी इन्द्रिय है जिसको पीनियल ग्लाण्ड (*Pineal Gland*) अथवा दिव्य चक्षु कहते हैं। इसको उन्नत करके हम ऐसी अवस्था में ला सकते हैं जिससे यह मन चाहा कार्य हो सकता है। यदि कोई मनुष्य दृढ़ता पूर्वक एक ही विषय पर लगातार सावधानी से गूढ़ विचार करे तो उसे पीनियल ग्लाण्ड अथवा दिव्यचक्षु में एक प्रकार के मन्द कम्पन का अनुभव होगा जैसे उसके मस्तिष्क के अन्दर उस विशेष स्थान में चींटी चलती हो। यह कम्पन एक हलकी सी चुम्बक धारा उत्पन्न कर देता है जिससे दिव्य चक्षु के स्थूल कणों में कम्पन का अनुभव होता है। यदि विचार इतना तीव्र हो जाय कि उससे चुम्बकीय क्षेत्र बन जाय और साधक को उस कम्पन का अनुभव होने लगे तो साधक जान जाता है कि उसे संकल्प को एकाग्र करने और स्थानान्तर भेजने के योग्य बलवान बनाने में सिद्धि प्राप्त हुई है।

दिव्य चक्षु के आकाश का कम्पन आसपास के आकाश में प्रकाश की तरंगें उत्पन्न करता है। ये तरंगें प्रकाश की तरंगों की अपेक्षा बहुत छोटी, सूक्ष्म और बहुत ही तीव्र गति वाली होती है तथा एक साधक के मस्तिष्क से संकल्पों को दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में जाने के लिए किसी प्रकार से पर्वत अथवा दीवालों द्वारा रुकावट नहीं हो सकती। दिन के समय सूर्य के प्रकाश और गर्मी तथा सांसारिक चहल पहल के कारण संकल्प के कंपन मार्ग के कुछ विचलित हो जाते हैं परन्तु रात के समय जब अंधकार रहता है और संसार में आकाश शान्त रहता है तब विचार बड़ी तीव्र गति से चलते हैं। चाहे साधक चारों ओर से बन्द गुप्त कमरे के अन्दर से विचार प्रेषण किसी भी दिशा को करे, मार्ग में कोई भी जबरदस्त पदार्थ रुकावट डाले, कुछ असर नहीं पड़ सकता और विचार अवश्य अपने निश्चित स्थान को, जहां के लिए उनको प्रेरित किया गया है—जायंगे। यदि दूसरे व्यक्ति का मन इतना उन्नत नहीं है और उसके दिव्य चक्षु में कम्पन का अनुभव नहीं होता तो—साधक के मस्तिष्क से निकले हुए संकल्प दूसरे व्यक्ति के पास जाकर वहां से वापिस अपने प्रेषक के पास लौट आवेंगे और दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में प्रेषित संकल्पों का कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा जैसे कि प्रकाश की तरंगों का कोई प्रभाव अन्धे मनुष्य के चक्षु पर नहीं पड़ता।

संकल्प को दूसरी रीति से स्थानान्तर भेजने में मनन कर्ता अपने मानसिक क्षेत्र में दूसरे व्यक्ति का चित्र बनाकर उसके मस्तिष्क तक संकल्प नहीं भेजता किन्तु उसे सीधा दूसरे मननकर्ता की ओर मानसिक क्षेत्र में प्रेरित करता है। इस प्रकार की क्रिया सावधानी से करके सामर्थ्यवान् होने के लिए प्रथम रीति की अपेक्षा अधिक मानसिक उन्नति और एकाग्रता

की आवश्यकता है क्यों कि यह साधन करने के लिए संकल्प प्रेरक को मानसिकक्षेत्र पर आत्म-दृष्टा होना आवश्यक है। किन्तु संकल्प की स्थानान्तर प्रेरणा शक्ति को हम सब लोग अ-प्रत्यक्ष और अज्ञात रीति से काम में लाते रहते हैं क्योंकि हमारे सब विचार मानसिक क्षेत्र में कम्पन उत्पन्न करते हैं और नियमानुसार इन कम्पनों का प्रभाव मानसिक प्रकृति पर अवश्य होता है। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति अपनी अलग रीति से विचार करते हैं। उसका अपना प्रभाव अपनी मानसिक उन्नति करने में अन्य मनुष्यों की अपेक्षा अधिक बलवान है। वह अपने मन की साधारण कम्पनगति को आप ही नियत करता है। जो विचार उसके कम्पनों के सजातीय नहीं होते वे आप ही लौट जाते हैं। यदि कोई मनुष्य सत्य का मनन करता है तो उसके मनमें झूठ के विचार नहीं आसकते, आते ही लौट जायेंगे। यदि वह प्रेम पर मनन करता है तो 'घृणा' उसके मन पर प्रभाव नहीं डाल सकती। यदि वह विज्ञान का विचार करता है तो अज्ञानता उसे जड़ीभूत नहीं कर सकती।

केवल इसी नियम में दृढ़ होकर हमें शक्ति प्राप्त होती है मनोभूमि को ऊसर पृथ्वी समझ कर कभी खाली न पड़ी रहने देना चाहिए— उसमें कोई संकल्प बीज पड़कर वह उगकर वृद्धि पा सकता है। यदि तुम अभ्यास करोगे तो इस अदृश्य जगत् के व्यापार में तुम्हें सफलता प्राप्त होने पर स्थूल जगत् के व्यापार में सहज ही सफलता मिल जायगी क्योंकि अदृश्य जगत् के व्यापार ही स्थूल जगत् के व्यापार का आधार है। तुम यदि सूक्ष्म जगत के इन नियमों का अभ्यास और पालन करोगे तो उसका मूल्य और महत्व ज्ञात हो जायगा जिससे विश्वास हो जायगा कि विचार द्वारा जीवन अधिक शुभ, सुखी और आनन्दमय बनाया जा सकता है।

हम इसलिए नहीं जन्मे कि...

(श्री स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजक)

क्या ईश्वर का यह अभिप्राय था कि मनुष्य जगह जगह मारा मारा फिरे? क्या उसका यह मतलब था कि मनुष्य भूख से तड़प तड़प कर प्राण दे? यदि उसकी यही इच्छा थी, और इसी लिए उसने मनुष्य को उत्पन्न किया है तो हम ऐसे परमात्मा को दयालु नहीं कह सकते। यदि परमेश्वर ने मनुष्य के जीवन को एक बोझा ही बनाया है जिसके लिए वह दुनियां में भटकता फिरे, कहीं बैठने को ठिकाना न मिले, जहां जाय वहीं गालियां खाय, जिधर नजर उठावे उधर दुख ही दुख दिखाई दे, यदि इसीलिए परमात्माने मनुष्य को पैदा किया है तो उसका सृष्टि रचना व्यर्थ हो जाता है। क्योंकि अधिकांश मनुष्यों के लिए यह संसार नरक के समान है, जिस नरक में वे केवल दुख उठाने के लिये आते हैं।

क्या परमात्मा ने मनुष्य समाज को इसलिये संगठित किया है कि यहां पर मुट्ठी भर आदमी सारी मनुष्य समाज पर राज्य करें? या उसका कुछ मनुष्यों के साथ अधिक प्रेम है कि उसने उनको दूसरों के ऊपर—अधिकांश लोगों के ऊपर प्रभुत्व दे दिया है? यदि उसकी यही इच्छा है कि मनुष्य समाज के थोड़े लोग आनन्द उठावें और बाकी दासत्व में पड़े पड़े सड़ जावें, तो हम ऐसे ईश्वर को न्यायकारी नहीं मानते।

यदि परमात्माने मनुष्य को इसलिए बनाया है कि उसे मेहनत मजदूरी करने पर अन्न न मिले, काम करने की योग्यता होने पर भी मजदूरी के लिए जूतियां चटखानी पड़ें। यदि ईश्वरने मनुष्य को इसलिए पैदा किया है कि वह गर्मियों के दिनों में जेठ असाढ़ की धूप सहता हुआ अनाज पैदा करे और अन्त में उसकी कमाई को निखट्टू लोग आनन्द से उड़ावें। यदि यही उद्देश उस कर्त्ता का मनुष्य को पैदा करने से है तो हम ऐसे

प्रभु को दूर से नमस्कार करते हैं।

यदि ईश्वर ने मनुष्य को इसलिए उत्पन्न किया है कि वह ईमानदारी से जीवन व्यतीत करता हुआ भी धूर्तों के हाथ से कष्ट उठावे, अदालतों में उसके साथ बेइन्साफियां हों, कुकर्मी मनुष्य उसके ऊपर आधिपत्य करें। यदि परमेश्वर ने मनुष्य को इसीलिये पैदा किया है कि वह अपने बाल बच्चों का सन्ताप उठावे, उसकी स्त्री को रहने के लिये जगह न मिले, उसको धार्मिक जीवन व्यतीत करने का अवसर भी प्राप्त न हो— यदि ईश्वर ने मनुष्य को इसलिए पैदा किया है तो हम उस ब्रह्म को निर्दोष मानने के लिये तय्यार नहीं है।

कई एक हमारे महात्मा मित्र हमको यह कहेंगे—"जो कुछ कष्ट मनुष्य को होता है वह उसके पूर्व जन्म के कर्म्मों का फल है, जो कुछ मनुष्य दुख उठाता है वह उसका अपना अपराध है। समाज में जो थोड़े मनुष्य अधिकांश सभ्यों पर प्रभुत्व करते हैं उन्होंने पिछले जन्मों में अच्छे अच्छे पुण्य किये हैं" जो उपदेशक हमको ऐसे ऐसे उपदेश देते हैं उनको मनुष्य समाज के अन्यायों का अनुभवजन्य ज्ञान नहीं। यदि परमात्मा दोषों से रहित है और उसकी बुद्धि में कोई भी त्रुटि नहीं तो वह कभी भी पुष्ट और निरोग शरीर मनुष्यों को भूख से मरने के लिये पैदा न करता। जन्म से अन्धे मनुष्य को देखकर हम यह कह सकते हैं कि यह उसके पूर्व जन्म के कर्मों का फल है। परन्तु एक बच्चा जो सुन्दर आरोग्य शरीर लेकर संसार में आता है और बड़ा होकर अपने खाने के लिए भी अन्न नहीं पाता तो इस अवस्था में यह कहना कि यह उसके पूर्व कर्मों का फल है केवल परमात्मा पर लाञ्छन लगाना है। आरोग्य बालक का पैदा होना ही इस बातको सिद्ध करता है कि उसके लिये सब प्रकार के अवसर अपनी ईश्वरदत्त शक्तियों के विकाश के लिए मिलने चाहिये। यदि ऐसा नहीं होता तो इसके अर्थ यह है कि जिनके हाथों में मनुष्य समाज की बागडोर है, वे उस आरोग्य बालक के हिस्से को आप उड़ा जाते हैं और उसके साथ घोरतर अन्याय करते हैं।

आवागमन के सिद्धान्त की इस प्रकार झूठी व्याख्या करना और सन्मुख होते हुए अन्याय को देखकर पूर्व जन्म का ढकोसला जड़ देना—केवल ऐसे ही महात्माओं का काम है जिनकी सर्व साधारण के साथ कोई भी सहानुभूति नहीं, जो केवल अपने ही स्वार्थ को देखते हैं।

मनुष्य समाज के दुखी सभ्यो! आओ हम आपके दुखों की सच्ची व्याख्या करके दिखलावें। आपके लिये यह नया सन्देशा है। मत समझो कि आपके दुख दूर नहीं हो सकते। जो कष्ट आप उठा रहे हैं वह आपके पूर्व जन्मों के कर्म्मों का अपराध नहीं और न आपके भाग्य ही का इसमें कोई दोष है। परमात्मा तो न्यायकारी है। उन्होंने आपको कष्ट सहने के लिए पैदा नहीं किया। उठो! प्रसन्न हो जाओ, ईश्वरदत्त सन्देशा सुनो। यदि आपने इस पर पूर्णतया विचार किया और इसके अनुसार अपना जीवन बनाया तो यह संसार आपके लिए सुखदायी हो जावेगा। अन्यायी और धूर्त लोगों का नाश होगा और मनुष्य समाज के सब सभ्य मित्रता पूर्वक रहने लगेंगे।

यह संसार आनन्द के लिए ही नहीं है, यह केवल परिश्रम का स्थान है। यहां जो आनन्द हमें प्राप्त होता है वह इसलिए मिलता है कि हम किसी आगामी परिश्रम के लिए और भी दृढ़ हो जायें।

\+ \+ \+

आलस्य का सबसे बुरा फल, कुप्रवृत्तियों को उकसाना है।

\+ \+ \+

आलस्य वह राजरोग है जिसका रोगी कभी नहीं संभलता।

\+ \+ \+

मेरी डायरी के पृष्ठों से—

(डा० गोपालप्रसाद 'वंशी' वेतिया)

सच्चा मित्र वह है, जो मेरे शारीरिक और मानसिक दुखों की चाहे उपेक्षा कर जाय परन्तु मेरी आत्मा के पतन को सहन न करे।

\+ +

आमोद-प्रमोद जीवन के आरम्भ का उफान है। + +

दया करना ऊँचा उठना है, परन्तु दया पात्र बनना अपने तेज को कम करना है।

\+ +

सहानुभूति का अर्थ है—उसके दुख को अपना दुख समझने लगना। यदि सहानुभूति है तो फिर यह असंभव है कि मैं उसके दुख को दूर करने का कुछ भी प्रयत्न न करूँ।

\+ +

जिसके हृदय में दया नहीं, भगवान उस पर दया नहीं करते। सब जीव भगवान के परिवार हैं। जो व्यक्ति जीवमात्र की मंगल कामना के लिये सबसे अधिक चेष्टा करता है, वही भगवान का प्रियतम सेवक और श्रेष्ठ भक्त है।

\+ +

हर एक की प्रवृत्ति में दया, करुणा और कुकर्म से अरुचि के अंकुर हैं, चाहे वह उन्हें सींचकर बढ़ादे, चाहे सुखा दे। यह सब गुण केवल अभ्यास से पुष्ट होते हैं।

÷ ÷

हमें जीवन इसलिये प्रदान किया गया है कि सद्विचार से और सत्कामों से उसे उन्नत करें और एक दिन अनन्त ज्योति में विलीन हो जायँ।

÷ ÷

प्रार्थना अन्तःकरण का स्नान है। स्फूर्ति, पवित्रता, बल उसका फल है।

÷ +

प्रार्थना का अर्थ है—उच्च नियमों, सद्गुणों और उच्च आदर्शों का स्मरण।

÷ ÷

सुन्दरता रूप में है, गुण में है या देखने वाले की आंखों में है? यदि रूप में है तो लैला में कौन सा रूप था? यदि गुण में है तो वेश्याओं के इतने उपासक क्यों हैं? इतने तलाक क्यों दिये जाते हैं? यदि देखने वाले में है तो फिर बाह्य जगत की क्या आवश्यकता है?

÷ ÷

सुन्दरता वहीं है, जहां सत्य है। सुन्दरता वहीं है—जहां शिव है। सत्य सदा कल्याणकारी होता है। मनुष्य को वही वस्तु सुन्दर मालूम होती है, जिसमें उसका मन रम जाता है—मन को आनन्द और शान्ति प्रतीत होती है। आनन्द और शान्ति वास्तव में सत्य के ही परिणाम हैं, परन्तु स्थूल-बुद्धि-मनुष्य उन्हें रूप आदि बाह्य साधनों में देखने लगता है। इसलिए वह विलासी बन जाता है। यदि वह उसके तह तक पहुंच सके तो सच्चे सौन्दर्य का उपयोग भी करेगा और उसकी वासना से भी दूर रहेगा।

÷ +

दुखी आत्मा दूसरों की नेक नीयती पर सन्देह करने लगती है।

\+ +

धर्म का अर्थ है—दुर्बलों की रक्षा करो। बलवानों का अत्याचार उन पर मत होने दो। न्याय और सत्य की सदैव शरण ग्रहण करो। अज्ञानियों के हृदय में ज्ञान की ज्योति का प्रचार करो। मूढ़ जनों को चेतावनी दो कि वे इस महाप्रभु की मङ्गलमय सृष्टि में अपने सत्यों को पहचानें। अपने अधिकारों को मत नष्ट होने दो, उनकी रक्षा करो। अपने कर्त्तव्य पालन में डटे रहो। जीवन संग्राम में संभल-संभल कर अपने डग बढ़ादो। धर्म का यही तत्व है।

\+ ÷

धर्म की परिभाषा

(श्री सत्यप्रकाश 'सत्य' वजीरपुरा आगरा)

धर्म की परिभाषा या ठीक २ स्वरूप जानने के पहिले उसकी व्युत्पत्ति जान लेनी आवश्यक है। "धृज् धारणे" धातु से औणादिक मन् (पा० सू० १४५) प्रत्यय होकर धर्म शब्द सिद्ध होता है। इसका साधारण अर्थ है कि जो धारण किया हुआ है उसका नाम धर्म है। किसीने कहा भी है कि 'धारणाद्धर्म इत्याहुः'–धारण से धर्म कहा गया है।

अब सवाल सामने है कि—जिसे सबने धारण किया हुआ है वह धर्म है ? या जिसने सब को धारण कर रक्खा है, वह धर्म है ? इन दोनों प्रश्नों का उत्तर एक ही है। और वह यह है कि–जिसको सबने धारण कर रक्खा है, उसी ने सब को धारण कर रक्खा है। और वह है 'स्वभाव।' जैसे पृथ्वी ने गन्ध, जल ने शीतलता, अग्नि ने उष्णता वायुने स्पृश्यता आंखने रूपग्रहण या देखना, कान ने सुनना, नाक ने सूंघना, त्वचा ने स्पर्श–और इसी तरह अन्यान्य चीजों ने भी जो जिसका स्वभाव हैं, वह सबने धारण कर रक्खा है। इस दृष्टि से स्वभाव का नाम धर्म होता है। फिर जब हम यह विचार करते हैं कि—जो सब को धारण किया हुआ है उसीको धर्म क्यों न माना जाय ? तो भी स्वभाव को ही धर्म मानना पड़ेगा। क्योंकि इन वस्तुओं का स्वभाव जिस दिन इनको छोड़ देता है उस दिन ये स्वतः नष्ट हो जाती हैं। इस स्वभाव ने ही इस संसार की चीजों को धारण कर रक्खा है। इसलिए हमारे पूर्व शास्त्रज्ञोंने कहा भी है कि—

"धर्म एव हतो हन्ति धर्मोरक्षति रक्षितः"

अर्थात्—"वही मारा गया है जिसका धर्म मारा गया है और वही बचा है जिसका धर्म बचा है।" इससे और भी स्पष्ट हो जाता है कि संसार को इन जड़ वस्तुओं ने जो अपने २ स्वभाव धारण कर रक्खे हैं तथा इनके जिन २ स्वभावों ने इन्हें धारण कर रक्खा है वही इनके धर्म हैं।

अब हम प्राणियों के जीवन की ओर आते हैं। और पूछते हैं कि प्राणियोंका जीवन धर्म क्या है ? तो उत्तर मिलता है कि प्राणियों का जीवन धर्म वही है जिसने प्राणियों के जीवन धारण कर रक्खें हैं या प्राणियों के जीवन ने जिसे धारण कर रक्खा है। अब फिर पूछना पड़ता है कि वह क्या है ? तो उत्तर मिले बिना न रहेगा कि वह है—'सुखों का साधन समूह।' क्योंकि सुखों के साधन धारण करने (जुटाने) का प्राणी के जीवन का स्वभाव है और इन सुख के साधन ने ही प्राणी के जीवन को धारण (रक्षित) कर रक्खा है। इसलिए निश्चय हुआ कि—"प्राणी का जीवन धर्म–अविनाशी सुख का साधन है।"

अथवा हम उपर्युक्त प्रश्न को इस प्रकार से सामने लावें कि–जीव के लिए धर्म क्या है ? तो इस प्रश्न के उत्तर के पहले हमारे सामने प्रश्न आता है कि जीव की स्वाभाविक आकांक्षा क्या है ?—इसके उत्तर में यदि कहा जाय कि–हमेशा सुख या आनन्द में रहना जीव के स्वभाव की आकांक्षा है तो हमारा पहिला प्रश्न स्वतः हल हो जाता है कि जीव के लिए धर्म आनन्द या सुखों का उपापार्जन करना है। क्योंकि–ऐसा न करना जीव के स्वभाविक गुण के विरुद्ध चलना है। लेकिन पशुपक्षी आदि मनुष्येतर प्राणियों को यह बात समझने शक्ति नहीं। अतएव अपने स्वाभाविक धर्म की पूर्ति करने की बात मनुष्यों पर ही लागू होती है अन्यों पर नहीं। इससे निश्चय हुआ है कि उन उपायों का ग्रहण करना मनुष्य का धर्म है जिससे इस लोक से परलोक तक सुख ही सुख या आनन्द ही आनन्द मिलता रहे।

महात्मा गौतम ने भी अपने वैशेषिक दर्शन में कहा है कि—

"यतोऽभ्युदयो निश्रेयसः स धर्मः।"

अर्थात्–जो हमें इस लोक में अभ्युदय व परलोक में मुक्ति पद प्राप्त करा सके उस नियम या नियमसमूह का नाम 'धर्म' है।

बापू सोरहे हैं।

(श्री शमीम किरमानी)

जगाओ न बापू को नींद आगई है।
अभी उठके आए हैं बजमे दुआ से।
वतन के लिये लौ लगाकर खुदा से॥
टपकती है रूहानियत सी फिजा से।
चली आती है राम की धुन हवा से॥
दुखी आत्मा शान्ती पागई है। जगाओ०॥ १
नहीं चैन से बैठने देती हलचल।
जो हैं आज दिल्ली तो बङ्गाल में कल॥
यह पीरी यह दिन रात की दौड़ पैदल।
सदा कौम रखती है बापू को बेकल॥
तड़प जिंदगी की सुकूँ पागई है। जगाओ०। २
यह घेरे हैं क्यों रोने वालों की टोली।
खुदारा न बोलो यह मनहूस बोली॥
भला कौन मारेगा बापू को गोली?
कोई बाप के खूँ से खेलेगा होली?
जमीं ऐसी बातों से थर्रा गई है। जगाओ। ३
सभी को है प्यार उस अजीजे वतन से।
फिरङ्गी ने जेलों में रक्खा जतन से॥
वतन पर वह कुरबान है जानो जन से।
वतन उसको मारेगा पिस्तौलो गनसे??
अबस मादरे हिन्द शर्मा गई है। जगाओ। ४
मुहब्बत के झण्डे को गाड़ा है उसने।
चमन किसके दिल का उजाड़ा है उसने?
गरीबान अपना ही फाड़ा है उसने।
किसी का भला क्या बिगाड़ा है उसने॥
उसे तो अदा अम्न की भागई है। जगाओ। ५
अभी उठके खुद वह बिठाएगा सबको।
लतीफों से पैहम हँसाएगा सबको॥
सियासत के नुक्ते बताएगा सबको।
नई रौशनी फिर दिखाएगा सबको॥
दिलों पर यह जुलमत सी क्यों छागई है? ज०६
अभी सिन्ध बाचश्म नम तक रहा है।
लिए दिल में पञ्जाब गम तक रहा है॥
अभी कांधी दम बदम तक रहा है।
अभी रास्ता आश्रम तक रहा है॥
मुसाफिर को रस्ते में नींद आगई है। जगाओ
वह सोएगा क्यों? है जो सबको जगाता।
कभी मीठा सपना नहीं उसको भाता॥
यह आजाद भारत का है जन्म दाता।
उठेगा, न आंसू बहा देशमाता।
उदासी यह क्यूँ बाल बिखरागई है? जगाओ
वह खून अपना खाता वह खून अपना पीता
वतन ही पै मरता वतन ही से जीता॥
जो इक बात कुरआँ तो इक बात गीता।
सितमगर वो हारे ये मजलूम जीता॥
जमाने पर मजलूमियत छागई है। जगाओ।
वह हकके लिये तनके अड़जाने वाला।
निशाँ की तरह रन में गढ़ जाने वाला॥
निहत्था हुकूमत से लड़जाने वाला।
बसाने की धुन में उजड़ जाने वाला॥
बिना जुल्म की जिससे थर्रा गई है। जगाओ१
वह बादल जो खेती पै बरखा को उट्ठे।
वह सूरज जो धरती की सेवाको उट्ठे॥
वह लाठी जो दुखियों की रक्षा को उट्ठे।
वह हस्ती बचाने जो दुनियां को उट्ठे॥
वह किश्ती जो तूफांमें काम आगई है। जगाओ०
वह सुकरातो ईसा की जुरअत भी उसमें।
श्री कृष्णो गौतम की शफकत भी उसमें॥
मुहम्मद के दिल की हरारत भी उसमें।
हुसैन इबने हैदर की हिम्मत भी उसमें॥
अहिंसा तशद्दुद से टकरागई है। जगाओ०
कोई उसके खूँ से न दामन भरेगा।
बड़ा बोझ है सरपे क्यों कर धरेगा॥
चिराग उसका दुश्मन जो गुल भी करेगा।
अमर है अमर वह भला क्या मरेगा॥
हयात उसकी खुद मौतपर छागई है। जगाओ०
वह परबत वह बहरे-रवां सो रहा है।
वह पीरी का अज्मे जवां सोरहा है॥
वह अमने जहां का निशां सोरहा है।
वह आजाद हिन्दोस्तां सोरहा है॥
उठेगा, सहर मुझसे बतला गई है। जगाओ।

युग पुरुष को— हमारी श्रद्धाञ्जलियाँ।

बढ़ी हुई धर्म ग्लानि को, अधर्म के अभ्युत्थान को, हटाने के लिए, साधुता के परित्राण, और दुष्कृतों के विनाश के लिए युग पुरुष म० गान्धी का अवतरण हुआ था। उन्होंने राजनीतिक स्वाधीनता का सफल संग्राम ही नहीं लड़ा वरन् मानव जीवन के हर क्षेत्र में अनीति के विरुद्ध नीति का युद्ध छेड़ा था। जिन उद्देशों को लेकर देवदूत पृथ्वी पर आते हैं उन्हीं को लेकर वे भी आये थे। अपने देश काल की स्थिति के अनुसार युग पुरुषों को कार्य करना पड़ता है, बापू ने भी वैसा ही किया था। उनकी कार्यशैली अपने ढंग की थी—अनौखी थी—पर थी देश काल की परिस्थितियों के अनुकूल।

बापू का महा प्रयाण—उनके निज के लिए बहुत ही गौरवमय हुआ, परन्तु हम सबके लिए यह बहुत ही लज्जाजनक और खेद पूर्ण है। जिस समय इस महामानव का, ब्रह्मकल्प ऋषि का, खून बहा उस समय आत्मवान् व्यक्तियों ने अनुभव किया कि इस महापाप से धरती माता डर रही है, कांप और कराह रही है। ऐसी ब्रह्महत्या एक लम्बे अतीत के पश्चात यह हुई थी।

इसे रक्त तर्पण का लोम हर्षक समाचार सुन कर 'अखण्ड ज्योति' कार्यालय में क्षुब्धता आगई। आचार्य जी ने पूरे तेरह दिन उपवास रखा। और इन दिनों साधारण कामकाज बन्द रखकर विविधि प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान होते रहे। अन्तिम दिन बापू की भस्मी मथुरा में श्रीयमुना जी में विसर्जित होने पर साधारण कार्य चालू किये गए।

अखंडज्योति परिवार के अधिकांश सदस्य महात्मा गान्धी की प्रवृत्तियों के समर्थक रहे हैं। कई बातों में मतभेद रहते हुए भी उनके मूलभूत सिद्धान्तों में इस परिवार की अगाध श्रद्धा रही है। तदनुसार हमारे पास जो समाचार इस मास आये हैं उनसे पता चलता है कि हजारों पाठकोंने व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से इस महा प्रयाण के उपलक्ष में धार्मिक व्रत अनुष्ठान किए। बापूकी श्रद्धाञ्जलियों के रूप में अखंडज्योति के पाठकों के करीब ७०० लेख हमारे पास प्रकाशनार्थ आये हैं। उन्हें छापना तो असंभव है पर इन लेखों से यह सहज ही पता चल जाता है कि सत्यनिष्ठा के पक्ष में हमारा परिवार कितना श्रद्धान्वित है।

बापू चल गए पर उनकी अमर ज्योति कभी बुझने वाली नहीं है। आइए हम उसके प्रकाश में आगे बढ़ें और दैवी तत्वों को अन्तर तथा बाह्य जगत में प्रचुर परिमाण में—बढ़ाने के लिए शक्ति भर प्रयत्न करें यही हमारी सच्ची श्रद्धाञ्जलि होसकती है।

गायत्री अंक की सूचना।

१ मई को अखंडज्योति का गायत्री अंक प्रकाशित होगा। पृष्ठ संख्या साधारण अंक की अपेक्षा ड्यौढ़ी रहेगी पर पाठ्य सामिग्री ऐसी महत्व पूर्ण होगी, जैसी कि आज तक कहीं से भी इस संबंध में प्रकाशित नहीं हुई।

गायत्री साधना के स्वयं प्राप्त हुए तथा दूसरों के सामने आये हुए अनुभवों को—सत्परिणामों को—लेखरूप में भेजने के लिए गायत्री साधकों से प्रार्थना है। जो इस विषय में विवेचनात्मक एवं खोज पूर्ण लिख सकें वे भी अपने लेख अप्रैल के अन्त तक भेजने की कृपा करें।

गायत्री अंक उतना ही छपेगा जितना अखंडज्योति के ग्राहक हैं। इसलिए जिन्हें यह अंक प्राप्त करना हो वे शीघ्र ही ग्राहक बन जायें। पीछे इस अमूल्य अंक के लिए पछताते रहने के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त न होगा।

अखण्ड ज्योति का 'गायत्री अंक'

ऐसी अलभ्य सामिग्री आज तक कहीं से भी प्रकाशित नहीं हुई है।

वेद हिन्दूमात्र के मान्य धर्मग्रन्थ हैं। इन वेदों का उद्भव गायत्री मंत्र से हुआ है इसीलिए उसे "वेदमाता" कहते हैं। एक शब्द में यों कह सकते हैं कि हिन्दू संस्कृति और मानव धर्मशास्त्र का मूल स्रोत गायत्री है। इसकी महिमा को आदि ऋषियों से लेकर स्वामीदयानन्द, महात्मा गांधी तक ने एक स्वर से, एक समान श्रद्धा से, स्वीकार किया है।

इस महामंत्र की विशद, वैज्ञानिक, तर्क, प्रमाण और कारणों समेत ऐसी सविस्तार व्याख्या अब तक कहीं से भी प्रकाशित नहीं हुई जिसके आधार पर धार्मिक जनता अपने इस 'बिन्दु में सिन्धु' के समान भरे हुए अथाह ज्ञान का अवगाहन कर सके। इस कमी की पूर्ति के लिए अखण्ड ज्योति १ मई को अपना "गायत्री अंक" प्रकाशित कर रही है।

गायत्री साधना की गुप्त विधियों को इसमें प्रकट किया गया है जिनके आधार पर वेद-पाठी पंडित से लेकर साधारण साक्षर व्यक्ति तक समान सुविधा के साथ उन साधनाओं के द्वारा अलौकिक लाभों को प्राप्त कर सकें।

इस अंक में रहने वाली पाठ्य सामिग्री का कुछ परिचय लेखों की निम्न सूची से लग सकेगा—

(१) गायत्री का तात्विक सूक्ष्म स्वरूप एवं इस ब्रह्मशक्ति द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति।
(२) गायत्री उपासना का वैज्ञानिक तत्व ज्ञान।
(३) गायत्री की आराधना से अन्तरंग जीवन में असाधारण परिवर्तन।
(४) गायत्री से षट् चक्रों का जागरण और २४ गुप्त शक्तियों का विकास।
(५) गायत्री साधना से अलौकिक चमत्कारी सिद्धियों की प्राप्ति।
(६) ऋतम्भरा बुद्धि और सतोगुण की वृद्धि का सर्व सुलभ राजपथ।
(७) गायत्री संध्या, गायत्री यज्ञ, गायत्री तप और गायत्री अनुष्ठान की विधियां।
(८) गायत्री साधना संबंधी आवश्यक नियमोपनियम।
(९) गायत्री की कृपा से प्राप्त होने वाले असाधारण लाभों की विवेचना।
(१०) वेदमाता गायत्री किस प्रकार चारों वेदों का ज्ञान अपने में धारण किये हुए है।
(११) गायत्री के प्रत्येक शब्द में भरे हुए गूढ़ ज्ञान के एक एक समुद्र का दिग्दर्शन।
(१२) गायत्री में से सर्वाङ्गपूर्ण मानव धर्म शास्त्र का प्रकाश।
(१३) गायत्री द्वारा इसी जीवन में, इसी लोक में सर्वतोमुखी स्वर्गीय सुखों का अवतरण।
(१४) गायत्री योग द्वारा ब्रह्म निर्वाण, निर्विकल्प समाधि, मुक्ति एवं परमात्मा की प्राप्ति।
(१५) गायत्री उपनिषद्—भाषा टीका समेत।

स्मरण रहे अखंडज्योति की उतनी ही प्रतियां छपती हैं जितने उसके ग्राहक होते हैं। जो सज्जन शीघ्र ही ग्राहक न बन जायेंगे उन्हें इस अंक के लिए उसी प्रकार पछताना पड़ेगा और एक एक कापी के लिए बीस बीस गुना मूल्य देना पड़ेगा जैसा कि पिछले विशेषांकों के बारे में अनेकों पाठकों को करना पड़ा है।

आप आज ही २॥) मनीआर्डर से भेज कर अखंडज्योति के ग्राहक बन जाइए। विलम्ब करना एक अमूल्य अवसर को हाथ से खो देना है।

व्यवस्थापक—
" अखंड ज्योति" कार्यालय, मथुरा

हा बापू !

(श्री जगमोहननाथ अवस्थी)

असमय वज्र प्रहार होगया, दिन में तारा टूटा,
युग-शंकर ने घूंट हलाहल हंसते-हंसते घूंटा।
जग का एक सहारा जो थी, क्षीण लकुटिया टूटी,
आंखों के आगे ही थाती हाय! [illegible] की [illegible]

युग की [illegible] की [illegible]
स्वयं खोगया महापुरुष [illegible] उजियारी [illegible]
हुआ काल [illegible] बापू का [illegible]
तीस जनवरी अन्त शून्य ले आई जग का क्रन्दन।

विश्व शक्तियां नची इशारे पर जिसकी भृकुटी के,
टिका राष्ट्र गोवर्द्धन बल पर था जिसकी लकुटी के।
धरती के उस मानव ने बढ़कर घातक को भेंटा,
सत्य अहिंसा की बांहों में वज्र-प्रहार समेटा।

अपने अर्जुन से न बूंद भर मांगा तुमने पानी,
स्वयं रक्त की गंगा तुमने यहां बहा दी दानी।
भारत भीष्म पितामह का शरशैय्या अब तो छूटी,
शोणित की गंगा की धारा वक्षस्थल से फूटी।

पल भर में बन गये हाय! तुम जग की एक पहेली,
तौल रही थी विश्व-शक्ति केवल तव शक्ति अकेली।
अभी देश की आजादी की हुई न पूर्ण कहानी,
पूर्णाहुति दे चले तुम्हारी पूर्ण हुई कुरबानी।

कल बम फेंका गया, किन्तु, तुम अटल रहे हे बापू!
आज गोलियां छाती पर खा अंचल रहे हे बापू!
बूंद रक्त के गिरे जहां वह काबा-मक्का-काशी,
मिट्टी तो मिट्टी है, लेकिन बापू! तुम अविनाशी।

पथ-दर्शक सिद्धान्त तुम्हारे प्रहरी होंगे युग के,
अमर रहोगे सदा देवता बन क्षणभंगुर जग के।
श्रद्धांजलियां आज स्वर्ग से बापू पूज्य हमारे!
आत्म-शान्ति दो विधे! जहां हो बापू अमर हमारे।

—"हिन्दुस्तान" से